कागलो गंगा जी में स्नान करे, तो भी वो हंस नी वण शके। वलिक वणी जगा' ने अपवित्र वणाय देवे। यूँ ही अणी पुस्तक ने वारवार वाँची, तो भी लाभ नी ले शक्यो। यातो म्हारी बुद्धि री वलिहारी है। वलिक कठे कठे म्हारी कम समझ शूँ गलतियाँ रे' गई है। जणाँ ने सज्जन जन दयापूर्ण स्वभाव शूँ सुधार लेवेगा।

महाराज साहब री सब पुस्तकाँ ने श्रीमान् परम दयालु धीर वीर मेदपाटेश्वर हिन्दूसूर्य महाराजाधिराज महाराणाजी श्री १०८ श्री भूपालसिंह जी बहादुर के. सी. आइ. ई. निज खर्च शूँ छपवावारो हुक्म वख्शायो।

गिरिधरलाल शास्त्री

---

* श्री *

महाराज साहव श्री चतुरसिंहजी रो संक्षिप्त परिचय ।

—*—

आप, कैलासवासी महाराणा साहव श्री फतहसिंह जी रा वड़ा भाई करजाली महाराज साहव श्री सूरतसिंह जी रा चौथा कुँवर हा । आपरो जन्म विक्रम सम्वत १९३६ माघ कृष्णा १४ सोमवार रे दिन व्हियो* ।

*श्रीगीताजी री मेवाड़ी भाषा री टीका री भूमिका में महाराज साहव री छप गई है । वर्तमान करजाली महाराज साहव श्री लक्ष्मणसिंह जी शूँ प्रार्थना कर असली जन्म-पत्री देखी, तो वणी में माघ कृष्णा १४ मिली । सज्जनाँ री जाणकारी रे वास्ते वा पूरी जन्म कुण्डली हीज दे देणी म्हूँ ठीक समझूँ हूँ ।

जन्म लग्नम् ७।२।४०।१२
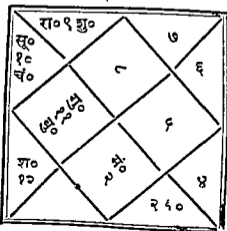
स्वस्ति श्री विक्रम संवत् १९३६ शाके १८०१ प्रवत माने माघकृष्णा १४ चन्द्रे घटी २४। पल १५ श्रवणनक्षत्रे घटी. ५५। पल २० इष्ट घटी ४५। पल १४ समये ९।२८।३४। २९ श्री सूर्ये जन्म॰

वंशपरंपरागत संस्काराँ रा प्रभाव शूँ आपरो झुकाव भक्ति री तरफ पे'लाँ शूँ ही हो। पण, विक्रमसंवत् १९६४ में आपरी धर्मपत्नी जी रो, देहान्त व्हे' जावा शूँ आप ने पूरी निश्चिन्तता व्हे'गई।

योग सीखवारी इच्छा शूँ आप नर्मदा नदी पर प्रसिद्ध योगिराज कमल भारती जी रे पास पधारया। परन्तु वठाँ आप ने ठा० सा० गुमानसिंह जी (बाठरड़ा) रे पास शूँ योगाभ्यास करवारी आज्ञा दीधी। वठाँ शूँ आपने राजराजेश्वर योग रो उपदेश मिल्यो।

वेदान्त, सांख्य, योग आदि दर्शन शास्त्राँ रो तत्व आप भली भाँति समझ लीधी हो, ने आणाँ रे सिवाय कुराण, बाइबल, जैन शास्त्र आदि में पण पूरो दखल हो।

ज्यादातर आप सुलेर, ने नौवा गाँव मे विराजता हा। नौवा में तो गाम रे बारणे मगरी रे मथारे एक कची कुटी वणवाय लीधी ही। जणी मे विक्रम सवत् १९७८ पौष शुक्ल ३ रविवार रे दिन आपने आत्मसाक्षात्कार व्हियो। वणीज मौका पर आप अलखपचीसी, तुही-अष्टक, ने अनुभव प्रकाश लिख्यो। आप सदा हँसमुख रे'ता हा। शरीर पर रेजा री बुगलबंदी, ने माथापर रेजा रो फेंटो धारण करता हा।

योगसूत्र आपने अतरो प्यारो हो, के आणी पर आप चार मेवाड़ी में, ने एक खड़ी बोली मे टीका लिखी। छेला दिनाँ में आपरे तकलीफ अधिक वध गई ही, ने वेठवारी शक्ति भी नी री' ही। तो भी आप टीका निर्वाणलाभ रे तीन दिन पे'ली ताँई

ावर लिखता हाँज रिया। विक्रम संवत् १९८६ अषाढ़ कृष्णा ९ दिन परभाते ९ वाज्याँ आप योगियाँ री गति ने प्राप्त व्हिया।

निर्वाण लाभ रे कुछ दिन पे'लाँ आप एक भजन बणायो हो। जणी रा अन्तरा दो चरण ई है —

"चातुर चोर चाकरी री पण, आखर थे अपणाय लियो।
जगदीश्वर जीवाय दियो, थें ही थारो काम कियो॥"

गिरिधरलाल शास्त्री

योगिवर्य—
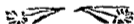
स्वर्गीय—महाराज साहब श्री चतुरसिंह जी

। श्रीः ॥

योगशास्त्र पे विचार

(भूमिका)

योग शब्द रो अरथ जुड़वो व्हे' है, ज्यूं

"मन कूं जोड़े ब्रह्म में शुमना योग पिछाण।"

अणी रो विचार जणी शास्त्र में व्हे' वो योगशास्त्र वाजे है। योग रा ग्रन्थ नरी ई तरे' रा व्हेवा पे भी पातञ्जल योगशास्त्र सब में शिरोमणि है। क्यूंके अणी में थोड़ा में ही सब तरे' रा योगाँ री मुख्य मुख्य वातां आय गई है। छै ही शास्त्रां में भी योगशास्त्र हीज मुख्य समझणो चावे। क्यूंके ई ने सबाँ ही आदर कीधो है।

पूर्व मीमांसा (कर्मशास्त्र)-वाळा के'वे के दानत शुद्ध राखणी, न्याय ने वैशेषिक (विचार शास्त्र)-वाळा के'वे के सब तत्वाँ रा छोटा अंश (परमाणु) रे' जावे है, ने वणाँ शूं ही पाछो संसार वणजावे, ने यो परमाणु है। ईंरो शाख योगी दे' है। क्यूंके यो योग्याँ ने हीज दिखे है। उत्तर मीमांसा (ब्रह्मशास्त्र) के'वे के निदिध्यासन (ब्रह्म में स्थिर व्हे' जाणो) ही मुख्य है, ने ई ने हीज योगी समाधि योग के'वे है, ने सांख्य* तो योगी रा विचार हीज है-अनुभव है।

---

*सांख्य (तत्व विचार) ने योग, तो एक हीज है ज्यूं-"एक हो सांख्य ने योग दीखे वीखे मणी ज ने।" गीता-

यूं सब शास्त्र, वेद, पुराण, मत (पंथ) कणी-ने-कणी तरे' शूँ योग रो आदर करे हीज है, ने संसार में भी जीव ठकाणे राख्याँ विना कोई काम आछो नी व्हे' सके है। ईं शूँ या वात शायत व्ही' के जो, मन ठकाणे जतरो वत्तो राखेगा, वतरी ही वणी री वत्ताई है। ज्यूं-'जो मन जीत्यो तो सब जग जीत्यो।'

"मन रे हार्‌याँ हार है मन रे जीत्याँ जीत। परब्रह्म ने पावणो मनरी ही परतीत ॥"

'बँध्यो गंडक (मन) ना'र बरोबर ने बँध्यो ना'र (आत्मा) गंडक (मन) बरोबर।'

या हीज वात, अठे योगशास्त्र में भी पाद १ सूत्र ३-४ में भी कही है। दूसरा मत ने शास्त्र, सब अन्दाज बाँधे, पण योगशास्त्र के' वे के यूं अठोठो ने पराधीन आँधा री नाईं लाकड़ी रे आधार पे क्यूं चालणो। जो है, तो देख क्यूं नी लेणो। देख्याँ विना ही मान लेणो तो एक तरे' रो भे'म है, के ज्यो मोका पे धोखो देवेगा, विना देख्याँ मान बैठणो नी मानवा बरोबर है। यूं तो नी व्हे' वींने भी मानणो आय जायगा। ईं शूँ देखो ने मानो, नी दिखे, वीं ने मती मानो। रही दिखवा री वात सो तो सब ही जाणे है के स्वाद आँख शूँ नी दिखे तो भी स्वाद है, ने वो जीभ शूँ दिख है; परन्तु स्वाद है ईं में फई भे'म नी। क्यूके जीभ शूँ चोड़े दिखे रियो है। यूँ ही कान शूँ रङ्ग नी दिखे, तो भी आँख शूँ चोड़े दिख रियो है। यूँ ही एक वस्तु दूसरी वस्तु ज्यूं नी दिखे, परन्तु दिखवा में कोई सन्देह नी। अणी तरे' शूँ वा ईं शूँ भी चोड़े देखलेणो, यो योग रो सिद्धान्त है, ने योग स्पष्ट के'वे के देखो ने मानो, स्पष्ट (शागे) देखो, निस्सन्देह देखो, या योग री

शघला मनख मानवा ने त्यार व्हे'जाता तो धर्म रा नाम शूँ जो आज अतरा भयङ्कर अधर्म फेल रिया है, वणा रो नाम भी नी रे'तो। राम ! राम !! धर्म रे वास्ते मनख ने मनख मारे राक्षस री नाँई। एक मतवाळा पे दूजो मतवाळा फटक्याँ करे। ठग, पाखडी, पे मनख विश्वास करे, मन में शान्ति नी आवे, भ्रान्ति नी मटे, वो भी धर्म वाजे, जदी अधर्म रे माथे कई शींगड़ा व्हे'गा।

योग के'रियो है, देखो ने मानो। नी दिखे तो देखवा रो उपाय करो। जरूर दिखेगा। साफ़ दिखेगा। है, तो दिखेगा हीज। ई में भे'म भटको री कई वात नी है। उपाय भी अश्यो नी के 'चट्टी आँगळा रा नख शूँ वेंत भरयो खाड़ो खोदे ने भाँपण्याँ शूँ भराव निकाळे तो वेंतयो मनख निकळे।' व्हे'ती वात है–काम में आय री' है–उरा ही वात है, असम्भव नी है। पण कराँ कई ! टोकराँ वजावताँ वजावताँ हाथ ठठ व्हे'गया वांग देताँ देताँ गळो पड़गयो, तीरथाँ में फरताँ फरताँ छाला पड़ गया, ने भूखाँ मरताँ मरताँ शरीर शूख गयो, अने कई कराँ, जीं शूँ दिखे। देखवारे वास्ते करो दिखवारे वास्ते मती करो। परत, शास्त्र में तो कियो है सो कीधो, तो भी कई नी व्हियो, जदी अने योगशास्त्र हीज साँचो है, यो म्हांने भरोशो कूँकर आवे ?

शास्त्र वाँचताँ वाँचताँ तो आँखाँ परी गई, शुणताँ शुणताँ कानाँ रा कोकरवा फूटगया, म्हाँ ने तो अवे शास्त्र पे भी भरोशो कोय नी। म्हाँ ने तो नास्तिकमत दाय लागो-खूब खावणो, पीवणो, मोजमजा उड़ावणा, मरयाँ पछे री कणी देखी है। अणी में योग री कई राय है ? योग री तो या हीज एक अटल राय है, के कणी भी वात री देख्या पे'ली राय कायम मती करो। यूँ भी मती के'वो

के फोय नी' ने यूँ भी मती के'वो के है। ज्यूँ-'नाई नाई केश कतराक व्हे'गा? के व्हे'गा शो आगे आवेगा योग के' रियो है-आगे वधो, पड़ी री जगा' अंगोठो मती आवा दो। पण बरावर आगे आगे वधता जावो। हरण री नांई फाल मत चूको। साँच री आड़ी वधोगा तो साँच ने अवश्य धू'रे धड़े पावोगा। पण साँच री पे'चाण कूँकर पड़ेगा। बाळकपणा में गुलीडंड्या हीज में साँच ने तृप्ति दिखती ही, ने जवानी में और बात सही जची, ने अवे और ही साँच दिखे है। यूँ ही एक दिन या भी झूठी निकल जायगा। अठे तो 'जणी रा ब्याव वणी रा गीत,' वाळी बात दिख री' है। माथो दूखे, ने तो जाणे संसार में दुख ही दुख है, ने पाछा आछा व्हिया, ते जाणे सुख ही सुख है। पण असल में है, कई जणी री खबर नी।

योग के'वे के सांच वो हीज है के—

(झूठ रो होवणो नी ने सांच रो मटणो नहीं। अणा रो तरणो कीधो दोयां रो ब्रह्म ज्ञानियां॥ ज्यो सवी' जवी में व्याप्यो जाण वो हीज नी मटे। वणी अखूट रो नाश कणी शूं भी व्हे'शके॥) जणी लाभ यचे वत्तो और लाभ गणे नहीं। जणी में ठे'र ने म्होटा दुःख शूं भी डगे नहीं। योग नाम अणी रो यो वियोग दुःख रो करे। जरूर साधणो योग नाम नी घबराँवणो।।

शतरंज में जणी खिलाड़ी ने पांच छै चालां अगाड़ी सूझ जाय, वणी ने नवो शीखदड़ के'वे के बस मात है। परंत मात तो वो हीज सुद व्हे'-रियो है। अवे वीं ने अगाऊ दिखी सो कणी शूं दिखी ने वणी ने नी दिखी सो कणी शूं भी-दिखी।

ईंशूं जाणी जाय है, के आँख, नाक, चामड़ी, कान, जीभ, शिवाय भी जाणवा री इन्द्रियाँ है। कणी ने साँचो सपनो आवे, वणी रो दिखवो कणी शूं व्हे'? यू अणी दिखवा शिवाय भी नरोई दिखवो है, ने ज्यूं भूखा ने कवा कवा में तृप्ति आवतो जाय, ज्यूं योगी ने भी विश्वास आवतो जाय, ने आगे वधतो जाय। पण कतराई वचे भी रुक जाय है।

योग के'वे के ई भी झूठी वातां है। वणी ने नरी आगे री चाल दिख री' है। वो पूरा साँच पे लेजाय रियो है। ई पड़तला रा हीज काम है, के टोकर वजावा में हीज पीड्यां विताय दीधी, ने वाँग देवा में हीज पूरा व्हे' गया, ने कोई के'वे-"ऊठो! आगे वधो, तो लडवाने त्यार व्हेवे। मनख आलश री पत्त करे। योग के'वे, गेला में मती वैठ-आगे वध"! मनख के'वे "वस, राज मिल्यो ने कृतकृत्य व्हिया।" कोई के'वे-"स्त्री मली ने जनम सुधर्यो। कोई वेटो, कोई धन, ने कोई जश। कोई कठे ही रुक जावे, कोई कठे ही।

योग के'वे, के आगे पूरो विश्राम है। यो तो वो गियो, मान कियो। सोखतां पोखतां राते ऊंट रो, घोड़ा रो शूलो हाडक्यो दे' री' है, ने हीरो के' री' है, ने दिख रियो है; पण परभात खवर पड़ेगा सोखतां सुखाय देगा। मनख के'वे प्रत्यक्ष मानूं हूं। योग के'वे यो प्रत्यक्ष नी है, सही नी है, थोड़ो आगे वध, अवार कली खुलेगा, फेर आगे वध, ई री भी कली खुलेगा। मे'नत नी आराम है, अभ्यास नी व्हेवा शूं मे'नत ज्यूं दिखे है।

पे'ली ज्यो ज़े'र ज्यूं, लागे लागे अमृत ज्यूं पछे।
शुद्ध बुद्धी रो वो सुख सतोगुणी।—

खावो, पीवो, मजा उड़ावो, सो तो ठीक; पण ई मजा थांने नी उड़ाय दे। 'रांड़ दिहयां केड़े मत आई फई काम री। से'ज है नजी'क है, कुछ ध्यान दो, थाँ शूं कई छोडावाँ नी। परन्त–

"अठे वठे कठे ही भी वणी रो नाश होय नी। भलाई करने भी ई बुराई पाय कोइ नी।"

बुरी आदत छोड़ दो! सही वात ने शोधवा में आँपणाँ अनुभव ने वधावा ने त्यार व्हे' जावो, नी तो ई घोड़ा ने ई चौगान।

ज्या साँच, पाछी भूठ नी व्हे' वा हीज साँच है, ने ज्या कोई थोड़ी देर सही दिखे ने पाछी भूठी दिख जाय, वा तो भूठ हीज है। ज्यूं

"वारला सुख सारा ही दुखाँ री हीज खान है। वणे ने वगड़े यां में ज्ञानवान रमे नहीं।"

जदी आँपाँ साँच सही वात जाणा वणी ने ही मानणी चावां, ने वणी शूं ही राजी व्हाँ। परत पाछी वा हीज भूठी निकळा जाय, जदी फेर एक दूसरी ने साँची मानलाँ, पण आखर में सब भूठ दिख जावे, जदी जीव घवराय जाय। क्यूंके–

"भूठ रो हो वणो नी' ने साँच रो मटणो नहीं। अणाँ रा नरणो कीधो दोयाँ रो तत्वज्ञानियाँ।"

यूं ही जदी साँच ने आपणो मन शोध रियो है, तो आँपाँ ने चावे के अश्या साँच रो पत्तो लगावाँ, के ज्या कधी भूठी व्हे' हीज नी शके।

ज्यूं कोई वळावो साथ में रे'ने ठकाणे पुगाय दे, यूं ही योग भी वणी साँच तक पुगाय देवा रो वळावो है। आज योग रे वास्ते मतख भटकरिया है, कोई।

"दोई खोई रे जोगड़ा मुद्रा ने आदेश। नहीं कराया कातरया, नहीं कराया केश।"

ज्यूं-'घर रा रिया ने घाट रा, वी वेंडो रा वाटका री नाँई व्हे' रिया है।' कोई रोगी ने जोगी माने है, तो कोई ढोंगी ने।

यूं नराई पाखंड चाल गिया, ने अज्ञान शूं लोग आँधा व्हे' रिया है। कतराई योग रा एक मुकाम पे पूग ने ही निरांत कर ने वेठ गया, तो कतराही योग रो नाम शुणतां ही भड़के है। योग-शास्त्र रे रे'तां यूं भटका खाणो शूझता सूरदास व्हे'णो है।

अणी योग शास्त्र रो वेदव्यासजी महाराज अर्थ समझायो। वणी ने देख ने ई ने मेवाड़ री बोली में करवा रो मन व्हे' गयो। मेवाड़ आखी ही तीरथ ज्यूं है, पे'ली अठे वड़ा वड़ा योगी व्हे' गया है। ज्यूं-(शृङ्गीऋषि) सिंगीरिष जी, भिंडीरिषि जी, विभांडक रिषि, (मांडूक्य) मांडव, आदि नरा ही जणाँ। मेवाड़ में जठा देखो वठी ही, मन ने शान्ति मले, वशी जगा दिखे। जाणे, मेवाड़ कई, ऋषियाँ रो हीज आश्रय है। अठा रा राणा हम्मीर, कुम्भा, समरसी, प्रतापसिंह जी, राजसिंह जी, जस्या राजा और मीराँमाता उज्याराणी, ने कृष्णाकुमारी बाई जशी पुत्रियाँ व्ही' है, वणी री ज्यादा के'वा शूं, के'वा री वात छेटी पड़ जायगा। परंत महाराणा राजसिंहजी औरङ्गजेब पाखंडी रे जो कागद लिख्यो वां ने देखवा शू चोड़े दिखे है, के अठा रा राजा भी योगशास्त्र रा कतरा आछा जाणकार व्हियाहै।

अठे कणी'मत शू खार नी है, श्रीनाथजी री जशी भावभक्ति है, वशी ही श्रीएकलिङ्गजी री है, वशी ही श्रीऋषभदेवजी री है, ने जश्यो मुसळमान फकीर रो आदर है, तो वश्यो ही जैनी रो, ने सन्यासी रो है, मुसळमानाँ शूँ लड़ाई व्हो'तो भी वणाँ रा धर्म पे कठे ही खार नीं' कीधा। मूर्खता शूँ चावे मुसळमानाँ अणी वात पे ध्यान नी दीधो, पण अठे एक ही वात पे ध्यान रियो, के धर्म परमात्मा रो है। वणी रा नरा ही बारणा है। जो कोई पाखंडी मूर्ख वणी में जावावाळा ने रोके, तो वणी ने दण्ड देणो भी एक धर्म री रक्षा करणो है, सबाँ रो तो खास कर ने यो सिद्धान्त हीज व्हे'णो चावे।

अश्या मनखाँ ने जणी मेवाड़ जनम दीधो, अशी मेवाड़ री बोली में योगशास्त्र जरूर व्हे'णो चावे, ने जतरे कोई महात्मा ई में कई नीं के'वे जतरे म्हारी कालीगेली बुद्धि माफक ही कईक लिखणो अनुचित नी है।

यूँ तो सब वेद, पुराण, शास्त्र, मत, पन्थ, अणी री हीज टीका है। क्यूँ के ई सब अनुभव री नींव पे है, ने अनुभव ज्यो योगी रो हीज व्हे' है, ने विना अनुभव रो तो कोई भी काम सही नी, जदीज कियो है, के 'योग रो सार, ने ससार रो खार है।'

योग सब ही धर्मां रो राजा है। अणी रो ही हुकम अनेक तरे' री बोली में भाषान्तर करे, ने फैलायो गयो है। भाषान्तर करवावाळा योग री भाषा समझता हा, ने वणाँ, लोगां ने समझाया भी खरी, पण आळश थोड़ा ने हीज समझा दीधा। समझाया जी एक विहया, बाकी रा वे'क गिया।

ज्यूं—

"ईसा महमद एक सब, देखो सहित विवेक।
कच्चे कच्चे एक है, पक्के पक्के एक।"

"सो सयाण एक मत, एक अयाण अनेक मत।"

चावे कुराण व्हो', चावे पुराण, अंजील, सूत्र, वाणी, वेद, वहिस्ता सब महाराजाँ, योग री आज्ञा रा आँपणी आँपणी बोली में अनुवाद कीधा है। अणी'ज वास्ते योग रो कणी भी मत (पंथ) शू विरोध नी है। ई सबाँ री भाषा समझे है॥ पण अणारी भाषा नी' समझे, वी आपस में लड़े है, ने झगड़ा कर रिया है।

महाराज! योग सबां ने के'रियो है,-अरे थें आळस री क्रियो मान, क्यूँ लड़रिया हो। म्हूँ साफ साफ चोड़े के'रियो हूं के मन ने काबू में करो। थें उलटा आळस रे वे'कावा में आय, मत रा काबू में व्हे'रिया हो। देखो म्हारा हुकम रा भाषान्तर, कठे' लिख्यां है के मनरा काबू में व्हीं'ज्यो। थें झूठो पाखंड कर रिया हो। म्हें शास्त्र रा हुकम पे चाल रिया हाँ, ने चालो हो आळस रा हुकम पर। रही ईने काबू में करवा री तर्जाँ, सो अलग प्रकार री है। पण थें खाली तर्ज ही पकड़ रिया हो, पण मर्ज ने छोड़ रिया हो। तर्ज रो मर्ज पकड़ो, वाल्ले मांय ने आनन्द ही आनन्द छाय जायगा। कशी स्पष्ट आज्ञा है, ईं ने भूल जावा यूँ हीज नास्तिकता फैली। ज्यूं

"दिन आंथ्यो थाका बळद, पियो न क्यारो एक।
बच में पाणी फूटग्यो हिया फूट झट देख।"

आज मेवाड़ी भाषा में वणाँ योग मा'राज री आज्ञा रो अनुवाद करवारो विचार कीधो है। अनुवादक में अतरी योग्यता

नी है के योग महाराज रीं'ज आज्ञा रो अनुवाद करे, पण अनुवाद रो भी अनुवाद करणो मुशकिल व्हे'रियो है, तो भी ज्यूँ ठूठरी चतारो महा-सुन्दर तसवीर उतारे यूँ'ही यो म्हारो काम है सो सज्जन सुधार लेगा ने क्षमा करेगा।

योग साधना

श्री काका जी साहब (गुमानसिंह जी बाठरडा वाळा) रो यो सिद्धान्त है, के कर्म तीन तरे 'रा व्हे' है,-शुक्ल, कृष्ण, मिश्र,। जणी में कृष्ण ने मिश्र शूँ त्यागणा, ने मिश्र ने शुक्ल शूँ त्यागणा और ई शुक्ल भी योग शूँ छूटणा चावे, या ही ज बात गीता जी में "अनिष्टमिष्टं मिश्रञ्च" शूँ कही है। शुक्ल कर्म योगांग रो साधन ही है। अणी शूँ योग-साधन दृढ़ व्हे' ने करणो ने अणी में या रावणी के कर्म तो अवश्य करणा चावे। ज्ञानी व्हो'वा अज्ञानी, या बात-"पावनानि मनीषिणाम्" आदि शूँ श्री भगवान् जोर दे'ने हुकम कीधो है। क्यूँ के अणाँ विनाँ गति बन्द व्हे' ने योगी निरपयोगी व्हे' ने साधारण भाव शूँ भी गिर जाय है। जणी' ज शूँ महात्मा अणाँ वाताँ में अत रो जोर देवे। क्यूँ के सिद्धान्त री जननी साधना है।

(प्राणायाम रहस्य)

श्वास प्रश्वास शूँ इन्द्रियां चेते अर्थात् इन्द्रियां ने ज्ञान व्हेवे ने इन्द्रियों ने ज्ञान व्हेवा शूँ मन वणे । क्यूँ के इन्द्रियाँ रो झट झट गरणेटो खावा रो नाम हीज मन है। मन शूँ आखो संसार वणे अर्थात् निश्चय व्हेवे, निश्चय शूँ ही संसार है। पाछो अँवळो चालवा शूँ यो मिटे। निश्चय मन में, मन इन्द्रियाँ में ने इन्द्रियाँ शाँस में, शाँस प्रकृति में मिले जदी शाँस वा इन्द्रियाँ वा निश्चय आदि कई भी निणाळश दीख जाय। जदी'ज सब छूट मुक्ति व्हे' जाय है, ने ईं रो उपाय, शाँस में निश्चय शूँ मन ने मिलावणो है। यो, प्राणायाम करवा शूँ व्हे' है। प्राणायाम री विधि योगदर्शन वा भाष्य में देखणी।

॥ अथ योग सूत्र ॥

॥ दोहा ॥

नमो अलख गुरु प्रगट री, दया दृष्टि विन अन्त।
घणा कलप री उलट ज्या, करे पलक रो पंथ ॥१॥

सूत्र—अथ योगाऽनुशानम् ॥१॥

१—अथ श्री योग शास्त्र प्रारम्भः

२—या अखण्ड महा सुख री शमभ प्रारंभ व्हे' है।

३—ई री सुलाशो यूं भी व्हे' है के परमात्मा शूँ मिलवा री रीत रो नाम योग शास्त्र है, वणी रो आरंभ करां हां अर्थात् परमात्मा शूँ कूँकर मिलणो या वात अणी शास्त्र में वताई जायगा। 'योगानुशासन' शब्द जो संस्कृत में है, वणी रो अर्थ व्हे' है मिलवा री पतवाणी थकी वात अर्थात् शुणी शुणाई नी, पण धूरे धड़े देख ने कही जाय है अर्थात् परमात्मा शूँ मिलवारी सही रीत देखी थकी की' जाय है। अठे एक वात याद राखवा री है के

५—प्रश्न—हे गुरो ! अखण्ड सुख कैसे मिले, और सब दुःख कैसे मिटे ?

उत्तर—हे प्रश्न ! अब योगशास्त्र प्रारंभ किया जाता है।

नोट—(यह प्रश्नोत्तर ही योगशास्त्र है और इस में कई प्रकार से ही

परमात्मा शूँ मिलवा री रीत हीज मलवो नी' है। दूज्यूँ तो रीती रीत हीज है। कोई ज्यो यूँ के'वे के कोई मतलब री रीत कहो जीं शूँ फायदो व्हे'। परमात्मा रे मिलवा री रीत ने कई-करां। तो अठे या याद राखणी चावे के दुःख ने बिलकुल मिटावणो ने सदा सुख पावणो हीज फायदो है। सो फायदो परमात्मा शूँ मिल्या विना पूरो नी मिले। क्यूँ के दुःख मिटे ने पाछो व्हे' जाय है। सुख व्हे' ने पाछो मट जाय है। ई रे लिये परमात्मा शूँ मिलवो हीज एक अश्यो है के दुःख कदी व्हे' ही नी, ने सुख कदी मिटे ही नी। ई पे गीता-जी में हुकम कीधो है के

> "संही तो बुद्धि या हीज, योग री जाण अर्जुन।
> चक्कळाँ री नरी बुध्यां शाखा डाळयां अनन्त री।
> जणी लाभ बचे वत्तो और लाभ गणे नहीं।
> जणी में ठे'र ने म्होटा दुःख शूँ भी डगे नहीं॥
> योग नाम अणी रो यो वियोग दुःख रो करे॥"

पण रीतां तो नरी त'रे री है। शास्त्र, पुराण, मत, पंथां री तो पार ही ननी। हाल तो योग रा नाम शूँ ही नरी त'रे रा योग वाजे है। जदी कशी रीत सही, वणी पे के'वे है।

४—योगी सब ही है, या बात है हीज; तो भी कोई नी जाणे अणी वास्ते सांची बात ने जणाय देवा रे वास्ते अणी योग शास्त्र रो आरम्भ है। ने शास्त्र रो मतलब

योग प्राप्त होता है। इस बात को समझना चाहे, उसे योग शास्त्र समझ लेना चाहिये। इसी से सब दुःख मिट कर अखण्ड सुख मिलता है।

हो यो हीज है । नी' व्हे' सो के'वे तो झूठो ने व्हे' सो के'णो पुनरुक्ती (व्यर्थ) व्हे' जाय। अणी वास्ते है, तो खरी, पण वणी ने ऊँधो जाण लीधो—विपर्यय कर लीधो मो पाछो है, ज्यूँ जणाय देणो ही शास्त्र है। अणी वास्ते यो शासन हीज नी' है पण अनुशासन है। जणी रो हीज उपदेश है अर्थात् विपर्यय ने समझावणो है। अणी'ज वास्ते या सबां री थापोती है। योग रो अर्थ है-दुस्तां शूँ अलग (न्यारा) व्हे' जाणो। यो ही शान्ति रो अर्थ है, ने यो तो स्वाभाविक ही सदा सवदा स्वधर्म है हीज, या वात ही की' है। सहजावस्था योग रो दूसरो नाम है। अणी मे जत री वणावट वत री ही छेटी।

सू०—योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ॥२॥

१—योग चित्त री वृत्याँ रो रुकवो है।

२—मन री तरंगां ठे'र जाणो ही महासुख है। अणी ने ही योग के' है, ने मन री तरंगाँ ने चित्तवृत्तियाँ के' है।

३—योग चित्त री वृत्याँ रो रुकवो है। सुरता रो थिर व्हे' जाणो हीज योग है। सुरता जगा' जगा भटकती फिरे सो ही वणी री वृत्तियाँ वाजे है। ने वीं ठे'र जाय यो ही योग वाजे है। अणी विना रा मत (पंथ) कोई नी' है अर्थात् सुरता ठिकाणे नी रासगी

५-प्र०— योग किस को कहते हैं ?

या कोई मत नी' के'। अणी वात पे सबाँ ने ओशान राखणी चावे। दूज्यूँ

"दिन आँथ्यो थाका वळद पियो न क्यारो एक।
पाणी वच मे फूटियो हिया फूट मरदे रा"॥

वाळी वात व्हे' जाय है। अणी सुरता ने ही सांख्य. प्रकृति वा प्रधान भी के' है ज्यूँ राजा रे प्रधान व्हे' सो राजा री नजर नीचे काम करे है, यूँ ही या सुरता भी चैतन्य राजा री नजर आगे काम करे है। अणी रा तीन गुण है—सतोगुण (बुद्धि, ज्ञान), रजोगुण (मन) ने तमोगुण। यो मन शूँ दीखे सो जड़ धम। **"ज्ञान, अज्ञान, करणो, अणी रे गुण तीन ही।"** अणी रो स्वभाव है के जतरे आत्मज्ञान नी व्हे' वतरे नी रुकणो अर्थात् सुरता आत्म ज्ञान विना नी रुके है, या वात याद राखणी ने ई रो रुकणो ही योग है। सुरता मे जो सतोगुण है जणी शूँ याँ दूसरा दो ही (तम ने रजोगुण) ने जाणे है। वणी ने महत् वा बुद्धि वा चित्त भी के' है। वणी चित्त रे उलट जावा शू सब जगा शूँ सुरता समट ने रुक जाय है। यो ही योग है। सुरता उलटवा लागे सो सविकल्प, ने उळट जाय सो निर्विकल्प वाजे है। अणी शूँ यो मतलब निकळ्यो के सुरता रो चैतन्य री कानी व्हे'णो योग है। अणी जगा या भी याद राखणी के सुरता रो रुकणो योग है, रोकणो योग नी है। जो साधन करे है वो अज्ञानी नी है। पण पूरो ज्ञानी भी नी है। सुरता चेतन री कानी उलटवा लागे सो संप्रज्ञात सविल्कप योग वाजे है, ने साफ उलट जाय. वणी ने असम्प्रज्ञात निर्विकल्प योग

उ०—चित्त की वृत्तियों (तरङ्गों) के निरोध (रुकने) को योग कहते हैं।

के'है अर्थात् सुरता री चेतन री कानी व्हे'णो योग है। कोई चित्तवृत्ति से शून्य व्हे'णो योग नी मान ले ई शूँ के' है के—

४—चित्त, बुद्धि रो नाम है, ने वणी रा निश्चय रा भेदाँ ने चित्तवृत्ति के' है। वाँ मुख्य पांच है, ने वणां रा आठ ने आठ रा साठ ने साठ मे विपर्यय रा वासठ भेद व्हिया। ने वणा रा अनन्त भेद हीज यो 'वन्ध' वाजे है। यूँ ही अविपर्यय रा भी वासठ भेद, वणी विपर्यय शूँ उलटा व्हिया। वणी में तम (गुण) रा अविपर्यय रो व्हे' जाणो ही निर्वीज योग असंप्रज्ञात समाधि वाजे है। वाकी रा च्याराँ रो अविपर्यय व्हे'णो सवीज संप्रज्ञात योग वाजे है। मतलब-अविपर्यय ही योग है, ने विपर्यय ही अयोग है। ई ने ही ज्ञान, अज्ञान, विद्या, अविद्या आदि नामाँ शूँ ओळखे है। या वात आगे फेर स्पष्ट आवेगा।

सू०—तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् ॥३॥

१—जदी देखवावाळो आपणा स्वरूप में ठे'र जावे है।

२—मन री तरंगां ठे'र जावे, जदी यो देखवावळो अंणा शूँ न्यारो व्हे' ज्यूँ व्हे' जाय है। (ई ने ही स्वरूपावस्थान आपणां रूप में ठे'र जाणो के' है, ने यो ही महासुख है)।

५—प्र० चित्त की वृत्तियों के निरोध होने पर क्यों अखण्ड सुख मिलता है ?

शास्त्र रो सार प्रथम पाद है, ने प्रथम पाद रो भी सार च्यार सूत्र है, च्यार सूत्र रो भी सार तीसरो सूत्र है, ने तीसरा सूत्र रो सार दो अक्षर है, ने दो अक्षर रो सार एक अक्षर है।

४-असल में निश्चय मात्र रो साक्षीपणो ही पुरुष मे द्रष्टापणो है। यो द्रष्टापणो ही अणो रो आपरूप है। अणी सिवाय रा सब ही रूप वृत्तिया रा है। द्रष्टापणो तो सदा एक रस अविनाशी है हीज, ने निश्चयपणो भी है, तो अविनाशी, पण गुणा रा स्वभाव शूँ वणी रा मुख्य तीन हीज भेद व्हे' है—वणी मे पूरो सात्विकपणो, रजमिश्रितसात्विकपणो, ने तममिश्रितसात्विकपणो ई तीन ही गुणाँ रा तीन भेद व्हे' है। क्यूँके निराळश तो गुण एकलो रे'वे ही नी है, पण ओछा वत्ता माप शूँ निराळश या मिश्रित किया है। पूरो सात्विकपणो ही योग कियो है। वणी वगत जाणे द्रष्टा स्वरूप में ठे'रयो व्हे' ज्यूँ दीख जाय है। यो ही प्रकृति रो दीख जाणो है, ने निर्बीज समाधि है। दूज्यूँ वास्तव में तो पररूप में अवस्थान व्हे' ही नी शके है, ने बुद्धि रो दीखजाणो सविकल्प, ने तन्मात्रा रो दीखणो विकल्प है।.पण एक दाण भी ऊँचो दर्जो आयाँ केडे नीचो दीखणो पतन नी व्हे' है।

नोट—देखने वाले को अपना ज्ञान हो जाना ही योग है। योग, निरोध, स्वरूपावस्थान समाधि ये एक ही अर्थ के सूचक हैं।

सू०—वृत्तिसारूप्यमितरत्र ॥४॥

१-दूज्यूँ वृत्तियां सरीखो व्हे' जाय है।

२-तरगां नी ठे'रे जतरे यो (दीखवावाळो) जाणे तरंगा सरीखो अणाँ रे भेळो व्हे' जाय है। यो ही महादुःख है, अणी ने वृत्ति सारूप्य भी के' है।

३-दूज्यूँ अर्थात् यूँ नी रुके तो सुरता रे सरीखो दीखे है। ज्यूँ दर्पण में आपणों चे'रो नी देखां तो और और वस्तुआँ दीखवा लाग जाय है। परन्तु दीखे है, या के'तां ही पाछी निरता व्हे' जाय है। जाणे, एक म्होटा काच रे शामा आँपा आय ने ऊबारिया, वणी वगत आँपाँ दीख रियाँ हां। आँपणे आस पास री अनेक वस्तुआँ भी वणी काच में दीख री' है ने देखवावाळी आँख भी दीख री है। पण जदी आँखाँ दीखे वणी वगत आँख शूँ दीखवावाळी अतरी कोई चीजां नी दीखे, ने जणी वगत और चीजाँ दीखे वणी वगत आँखाँ नी दीखे। ईं में समझ लेणो के आँख रो दीखणो योगवृत्ति, देखवावाळा रा स्वरूप में ठे'रणो है-निरता है, ने और चीजाँ रो दीखणो सुरता है। योगवृत्ति तो या एक हीज है, ने यूँ सुरता तो नरी जगा भटके ज्या है, ने निरता तो या एक हीज है। अठे योग रा च्यार सूत्र पूरा व्हिया और अबे आगे सम्पूर्ण योग शास्त्र रा

५-प्र० चित्त की वृत्तियें नहीं ठहरें तो अखण्ड सुख क्यों नहीं मिलता?

उ० जब वृत्तियें नहीं ठहरती हैं (बिना योग के) तब दृष्टा भी वृत्तियों जैसा ही प्रतीत होने लग जाता है, इसी से सुख नहीं मिलता।

फेलाव अणा न्यार सूत्राँ रो हीज फेलाव है, ने मुख्य योग रो लक्षण तो दूसरा सूत्र में आय गयो है, सो ध्यान में रे'णो चाये।

४-यूँ जतरे पूरी सात्विकता अर्थात् अविश्यय योग नी व्हे' वतरे जाणे निश्चय रा भेदाँ सरीसो व्हे'। दूज्यूँ दृष्टा व्हे' जाय है। यो ही अयोग वाजे है, ने अणा निश्चय रा भेदां रो नाम हा वृत्ति यों है। निश्चय रो नाम चित्त (बुद्धि) है। यद्यपि प्रकृत्ति ने बुद्धि भी निश्चय रा भेद ज्यूँ जणाय है, पण प्रकृति तो निश्चय रो कारण, ने बुद्धि भेदाँ रो कारण है। जदी वृत्तिसारूप्य ही योग नी है, तो वृत्ति वैरूप्य ही योग व्हियो, यो ही निरोध वाजे है। वृत्ति सारूप्य, ने वैरूप्य दोई वृत्तियाँ हीज है। याँ रो हीज नाम अविद्या ने विद्या है। या योग चतु सूत्री है। अगी में सम्पूर्ण सार आय गियो। अबे दूजो सब अणी'ज रो फेलाव है। योग तो सहज ही है। अबे बणावट (वृत्तियां) रो विचार कीधो जाय है। क्यूँ के अणा रो जाणणो ही योग है।

नोट—कुल वृत्तियों से अलग ही वृत्तियों का दृष्टा है यही योग और किसी वृत्ति से मिला (वृत्तिरूप) दृ।। है, यही अयोगवृत्ति का आकार है।

सू०—वृत्तयः पञ्चतय्यः क्लिष्टाऽक्लिष्टाः ॥५॥

१-वृत्तियां पांच हीज है, अबकी, ने शोरी।

२-ई तरंगा पांच हीज है, ने अणां शूँ हीज ई सुख दुःख व्हे' है, जणी शूँ याने क्लिष्टा ने अक्लिष्टा के' है।

३-अबे या बात आई के वीं वृत्तियां कतरी है, जी रूकणी चावे। क्यूँ के अनन्त तरे' री तरंगाँ मांय ने उठती ही रे'है। वीं पे के'वे के यो पाँच हीज है, ने ये सुख दुःख वाळी है। सुख दुःख वाळी के'वा रो यो मतलब के आत्मध्यान री ज्यो वृत्ति है, वीं में ई सुख दुःख दोई नी है। परंतु एक अनोखो हीज खेल है। अणाँ पाँचाँ रा ही नाम भेद आगे बताया है। पण या समझ-लेणी चावे के धारणा कानो-विना ठिकाणे देखे सो ही वृत्ति है, ने घर कानी देखे- ठिकाण देखे ज्यो योग है। सांख्य में, प्रकृति ने वणी रा भेद विस्तार शूँ बताया है। वणीज़ प्रकृति ने अठे चित्त, ने वणी रा भेदां ने वृत्तियाँ की' है। प्रकृति एक तरे' री कलम है। जणी शूँ तीन रंग री स्याही निकळे है। धोळी, राती ने काळी। वीं शूँ या अनेक तरे' रा अवलख घतराम मॉड री' है। जणां ने चैतन्य पुरुष देख. रियो है। वणी में वत्ता धोळा रंग शूँ वा पुरुष री'ज तसवीर जदी पुरुष ने नजर करे, जदी वीं ने देख

५—प्र० वे वृत्तियें कितनी हैं। जिनसे पृथक् होने से (ठहरने से) द्रष्टा का स्वरूपाऽवस्थान (स्वरूप की प्राप्ति) कहा जाता है।

उ० वे कुल पाँच वृत्तियें हैं। क्लेश देनेवाली और मिटाने वाली, उनके दो भेद हैं।

पुरुप आँपणाँ रूप ने पछाणले,—जतरे वा ने था और और चत्राम चताय ने मोवती रे'वे है। पण या चत्राम लिखे कई, ने कठे लिखे। या तो खुद ही चतराम वण वण ने तमाशा करे है। वेद में ई ने अवलख वकरी री उपमा दीधी है ने क्यो है के अणी रे अवलख हीज वचा 'हे' है। और वी तीन ही रंग रा ओछा वत्ता- पणा शूँ नरी तरे' री दीसे है। ई ने जदी जाणले, के ई तो एक हीज वकरी रा रग है—ई तो तीन हीज रग ओछा वत्ता पणा शूँ तरे' तरे' रा दीसे है, जदी या आँपणा रग वदलणा छोड दे है। क्यूँ के वचा भी या हीज वणे है। ई मे या समभणी के जतरे नवी नवी वात दीसे जतरे वध है, ने जाण लीधी के चित्तवृत्तियाँ है, ने मोत्त है। के' है के **'अणाजाणया री आँगणे मौत।'**

४-निश्चय रा भेदाँ रो तो पार हा नी है। पण अणाँ पाँचाँ सिवाय और न्यारो काई भेद नी आय शके। अणी वास्ते ई भेद पाँच हीज है, ने यूँ देख ने देखवा शूँ तो दो रा हीज कुल भेद है। वी दो पेली किया जणी माफक विद्या ने अविद्या, या अविपर्यय ने विपर्यय रे सिवाय और कई नी है। पण, पूरो विपर्यय ने अविप र्यय नी है' तो भी जणी शूँ विपर्यय वदतो जाय, ने अविपर्यय घटतो जाय, वो भेद दुःख री कानी लेजावावाळो व्हेवा शूँ क्लिष्ट वाजे, ने ई शूँ उलटो अक्लिष्ट है। दुःख कई है, सो आगे आवेगा

नोट—वे ही अभ्यास-वैराग्य युक्त हों तो क्लेश मिटानेवाली (अक्लिष्टा) कही जाती है। और अभ्यास वैराग्य से रहित वे ही क्लेश देने वाली (क्लिष्टा) कही जाती हैं।

(क्लेश रा नाम शूँ)। अणी शूँ एक ने देखताँ एक, क्लेश रो भेद है, ने एक ने देखताँ वो हीज अक्लेश रो भेद है। ई में अपेक्षाकृत है, सो यूँ ही अपेक्षा कृत वधावता जावा शूँ पूर्णता मिल जाय। अविद्या री पूर्णता शूँ पाछो विद्या में आय शके। क्यूँ के सत्य ह, पण सत्य शूँ असत्य मे थी जाय शके। ईंज वास्ते भगवान् हुक्म करे के— **"थोड़ो भी यो सध्यो धर्म विनाश दुखरो करे।"**

सू० प्रमाण विपर्य्यय विकल्प निद्रा स्मृतयः॥६॥

१—प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा ने स्मृति॥

२—(१) ठीक दिखणो, (२) ऊँधो दिखणो, (३) नामहीन दिखणो, (४) कई नी दिखणो ने, (५) याद रो हीज दिखणो। ई पाँच ही मन री तरगाँ रा नाम है। याँ ने हीज प्रमाणे, विपर्यय, विकल्प, निद्रा ने स्मृति भी वे'है। देखे जीं रो या शूँ न्यारो व्हे पो ही योग है॥

३—यणा पाच ही वृत्तिया रा नाम ई है, जी वारणे भटके है ने वाकी सब अगाँ रा हीज भेद है—साच, झूठ, नाम मात्र, नींद ने याद।

५—प्र० कृपा कर इन पाचों वृत्तियों के नाम कहिये ?

उ० प्रमाण विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति।

४—वणाँ पांच ही बुद्धि रा भेदां (चित्तवृत्तियां) रा ई नाम है, ने नाम शूँ ही ई ओळखाय शके है। अणां में पेलो भेद (प्रमाण) ने दूसरो (विपर्यय) ही मुख्य है। अणां री ही नाम विद्या ने अविद्या है। बाकी रा तीन तो अणां रे साथे आछा बुरा व्हे'जाय है। पण प्रमाण भी जणी में नी जाय शके, उठे विपर्यय रो तो पत्तो ही कठे लागे, जदी विपर्यय रा कीधा थका प्रपञ्च रो वठे गुजारो ही कूँकर व्हे' शके। पण प्रमाण भी ज्यूँ वणी शूँ है, यूँ ही विपर्यय भी वणी शूँ ही है। नी सुवावे तो पामणां ने पामणो नी सुवावे, पण घर-धणी ने तो सब ही सुहावे।

सू०—प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि ॥७॥

१—प्रत्यक्ष (चौड़े) अठोटो (अंदाज) ने शास्त्र प्रमाण है।

२—शागे दिखणो, अंदाज शूँ दिखणो ने सांचा रे के' वा शूँ दिखणो, ई ने ठीक दीखणो के'वे है। ई प्रत्यक्ष अनुमान ने आगम बाजे है। ई प्रमाण रा हीज भेद है।

३—वणां पांच वृत्तियां में प्रमाण नाम री वृत्ति रा तीन भेद है। एक तो दिखे सो प्रत्यक्ष बाजे है। ज्यूँ कान शूँ शुणवो दिखे है, ने जीभ शूँ स्वाद दिखे है। यूँ ही आंख शूँ रंग, चामड़ी शूँ

---

(५) प्र०—प्रथम यह कहिये कि प्रमाण वृत्ति किसे कहते हैं?

उ०—प्रमाण यथार्थ को कहते हैं, इसके तीन भेद हैं—प्रत्यक्ष (इन्द्रियों से जाना जाय सो) अनुमान (अन्दाज) और

अड़णो (स्पर्श), नाक शूँ वास दिखे है। नें कणी दिखती वस्तु शूँ नी दिखती रो अठोटो बाँधणो अनुमान वाजे है। नें कणी सांचा मनख री वात आगम (शास्त्र) वाजे है। ई तीन ही बाता साँचो व्हे' है। जणीं शूँ याँ ने प्रमाण के'वे है। सो कणी वगत तो सुरता अणाँ में लागी' रे'है अर्थात् कणी वगत तो कई देखवा शुणवा आदि में लागी रे', कणी वगत कई देख ने अदाज बाँध्याँ करे, ने कणी वगत शास्त्र पे विचार करती रे' है। पण आज काले सो साँचो व्हे' तो प्रमाण है ? परन्तु भूल शूँ मनख भूटा ने भी प्रमाण मान रिया है।

४—प्रमाण, साँची समझ रो नाम है। वणी रा तीन भेद है—चोडेदिखणो, अदाज (अठोटा) शूँ दिखणो, ने साँचा रे के'वा शूँ दिखणो। वात तो तीन ही एक हीज है। अठे यो भाव है, के योग सत्य है, तो अणाँ तीन हीं वाताँ शूँ देखलो सो है ज्यूँ जणाय जाय। जदी चोडे है, ने नी मानो तो अदाज बाँध ने विचारो ने अदाज भी नी बँधे तो आगला के'गिया, वणी रे अनुसार ही विचार अदाज बाँधलो सो वणी शब्द शूँ अन्दाज ने अन्दाज शूँ साफ चोड़े दीखवा लाग जायगा। जदी मे'म भटकी कठे रियो। अणी वास्ते प्रमाण सरूप योग है, यो प्रमाण यो ही है, के प्रत्यक्ष दिखे है। अणी सिवाय और कई चावे, ने दिखवा रा जतरा भेद है, युल वृत्तियाँ है, ने यो ही प्रमाण वचन है। यो आप्त (आगम) योग है।

आगम (शास्त्र)। इन्हीं तीनों को प्रमाण (यथार्थ) वृत्ति कहते हैं।

सू०-विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठितम् ॥८॥

१—विपर्यय, मिथ्या ज्ञान। जो सही वात ने नी वतावे।

२—व्हे' तो और, ने दिखे और, ईं ने ऊँधो दिखणो के' है। अणी रो हीज नाम विपर्य्यय है।

३—ने व्यावृत्ति प्रमाग शूँ उळटी-व्हे' तो कई, ने जाणे कई, वीं ने विपर्यय के' है। ज्यूँ आछी ने, खोटी समझणी अर्थात् ऊँधी, सो कणी वगत सुरता व्हे' तो और, ने विचारे और है। सीपडी में चांदी रो दिखणो, ने शीदरी ने साँप जाणणो आदि।

४—है, जणी वात ने तो नी वतावे, ने वणी शूँ अँवळी (ऊँधी)-नी है ज्यो वतावे, अणी वुद्धि रा भेद रो नाम विपर्यय कियो है। अणी विपर्यय शूँ मिली थकी जतरी वृत्तियाँ है, सव क्लेश-दुःखवाळी है। क्यूँक विपर्यय ही दुःख है। अणीरा इ ज अविद्यादिक भेद है। विपर्यय ने जाण लेणा ही प्रमाण (अविपर्यय) विद्या है, ने जतरा अणी रा भेद है, वतरा ही ईं शूँ ऊँधा रा भेद व्हिया। यी हीज अपेक्षा शूँ विद्या रा ने एक ने देखताँ अविद्या रा भेद व्हे'ता जाय। यूँ कुल पाँच भेदाँ रा दो हीज मुख्य भेद है। जी ७-८ वाँ सूत्र में वताय दीधा है।

---

(५) प्र०—अब विपर्यय वृत्ति किसे कहनी चाहिये सो कहिये ?

उ०—प्रमाण से विपरीत को विपर्यय कहते हैं। जैसे-अन्य वस्तु को अन्य वस्तु समझना अर्थात् हो तो कुछ और ही और समझना कुछ और ही। जैसे—रस्सी को साँप समझना, सोने को गहना समझना आदि।

शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः ॥९॥

१—विकल्प वो वाजे, जो खाली नाम-मात्र हीज व्हे'

२—नाम रो हीज दिखणो, पण नामवाळा रो नी दिखणो, नाम रो हीज दिखणो वाजे है (ईं नैं ही विकल्प भी के'वे है)।

३—विकल्प वा वृत्ति वाजे, ज्या खाली नाम मात्र हीज व्हे' चीज कई नी व्हे' । ज्यूँ-हाबू। या हीज वृत्ति अकसर मनख ने विकळ कर दे' है। क्यूँ के प्रत्यक्ष बात तो कणी'क वगत व्हेवे, ने विकल्प तो रात दिन मनखाँ रे लागा ही' रे'। परभाव रा काम री आखी रात विचार करणो, ने चित्त रा निरोध री वगत विकल्प हीज व्हे' है, ने कोई स्मृति भी व्हे' है। यूँ ही चित्त कणी वगत निद्रा री कानी परो जाय है, ने कणी वगत विपर्यय करवा लाग जाय है। प्रत्यक्ष तो पंच तन्मात्रा है। पछे भी वर्णां री स्मृति व्हे' तो वा हीज पंच-तन्मात्रा है—स्मृति शूँ है। पण, तन्मात्रा सिवाय पदार्थ रो विचार, विकल्प है, ने वो भी विपरीत विपर्यय, ने केक निद्रा आय जाय। यूँ ही पाँच वृत्तियाँ ने रोकणी चावे। पण ई हीज वटी री व्हे' तो ठीक है—अक्लिष्ट है।

---

(५) प्र०—अब विकल्प वृत्ति, किसे कहनी चाहिये सो कहिये ?

उ०—जिस शब्द से अर्थ की प्रतीति-मात्र तो हो परन्तु उस शब्द का अर्थ कुछ भी न होता हो, उसे विकल्प कहते हैं। जैसे वन्ध्यापुत्र, शशशृङ्गादि (कोरी कल्पना) को विकल्प कहते हैं।

४—प्रमाण (सत्य), बिना विपर्यय कणी रो व्हे' अणी वास्ते विपर्यय भी साँच रे आश रे हीज है, पण है ऊँधो। ज्यू दीवारे नीचे रो अँधारो दीवारे आशरे (वणी रे उजाळा रे आशरे) रे'ने भी अंधरो। यू ही' विपर्यय में, ने प्रमाण मे भेद है, ने एक शूँ एक बिलकुल विरुद्ध है। जदी विपर्यय तो छोडे ने प्रमाण में (विद्या में) मनख फूंकर आय शके। क्यूके विद्या वाळा रे तो शास्त्र री (योग री) आवश्यकता ही कई। वी तो योग पाया थका ही है। ने विपर्यय वाळा ईं शूँ विरुद्ध व्हेवा शूँ कूँकर पाय शके। जणी पे के' के एक विकल्प, (भेद) बुद्धि री फेर है। जणी शूँ अठी रा वठी मनख अज्ञान मे शूँ ज्ञान में आय शके है। यो मनखाँ में भी समझणा व्हे' जी हीज जाण शके है। यो शब्द रे साथे साथे एक तरे' रो आकार बँधे पण वास्तव मे वणी रो अर्थ नी व्हे' है। अणी रो जाणणो ही' निर्विकल्प समाधिज्ञान है। ज्यूँ रेल रे वशे आँकड़ो व्हे' जणी शूँ जुड़ भी जाय, ने खुल भी जाय, यूँ ही विकल्प है। ज्यूं टूँटयो री बींद ने नट, असली भाव बताय ने आप नारी, ने नर नी रे' जाय। यूं आत्मा, अनात्मा, शास्त्र

१—लड़को परणवा जावे, जदी, परणेत रे दिन लड़कावाळा रे घरे सब लुगायाँ मिलने वणाँ में शूँ हीज एक लुगाई ने बींद, ने एक ने लाड़ी बणावे, ने नवो ब्याव व्हियो व्हे' वणीरे घरे गावती बजावती जाय ने तोरण मारे। पछे वठे ही अथवा पाछी आपणे घरे आय ने विधि शूँ परणेत-फेरा फेर वा रो दस्तूर करे'। लुगायाँ समझदार व्हे' तो वाणा गीत गावे, ने नी तो पछे बणा ने शूठे जरया गावे। यो बींद-बींनणो रे मंगळ रे वास्ते एक टोटको के'है। सम्पादक—

रो विवेक भी विकल्प ही' है। दूज्यूं भलाँ, जठे कीड़ी री ही वचे गुँजायश नी, वठे हाथी कूँकर निकळे, पण अंबावाड़ी से' ती (सहित) यो ही' काड़े।

सू०—अभावप्रत्ययाऽऽलम्बनावृत्तिर्निद्रा ॥१०॥

१—कई नी जणावे, ज्यूं दिखे सो निद्रा है।

२—नींद री नांई दिखणो, कई नी दिखणो वाजे है। ईं ने ही निद्रा वृत्ति भी के' है।

३—जाणे कई नी व्हे' असी वृत्ति ने निद्रा केवे है। अठे याद राखणी के अतरी वृत्तियाँ ज्यूं, निद्रा भी वृत्ति है। घणा खरा ईं ने समाधि माने है, पण या भूल है। समाधि रो वर्णन २-४ सूत्रां में आय गयो, ने आगे फेर आवेगा। सुरता रो ठिकाणे रे'णो समाधि है, ने ईं में तो शूनो शूनो भान व्हे' है। शूनो ठिकाणो कूंकर व्हे' शके। ठिकाणो तो साँचो ने थिर चावे।

४—नींद में जाणे कई नी जणावतो व्हे' ज्यूँ, जणाय है। पण आज तो नींद आछी आई, ने आज ठीक नी' आई,-या

---

५ प्र०—अब निद्रा वृत्ति किसे कहते हैं सो कहिये?

उ०—शून्यता का मान जिस वृत्ति में हो उसे निद्रा वृत्ति कहते हैं। (निद्रा भी वृत्ति है)।

(नोट) शून्यता में वृत्ति-निरोध नहीं समझना चाहिये।

वात विना जणायाँ कूँकर के'वाय शके। नींद मे भट भट आय आय ने विचार ओळखाय नी, जणी शूँ यू जगाय। यू ही मूर्च्छा में, ने मृत्यु री वगत व्हे' है। सपना मे भी जाग्रत वचे मन वत्तो चचल रे' है। जदी'ज थोडी देर नरी दिसे। पग नींद में तो वणी शूँ भी घणो तेज व्हे' जाय। जदी'ज स्वास वध जाय। यूँ तो सब ही निद्रा हीज है। सिवाय निर्विकल्प समाधि रे, पग तारतम्य रा भेद है। वास्तव में शून्य रो भान मरणो ही साक्षात्कार है। ब्रह्मलोक तक शूँ पाछा पडे, सो यो ही' भाव वठा तक सूक्ष्म आकार में रे' हीज जाय। अणी शूँ जाग्यो ही' बुद्ध कई-प्रबुद्ध है।

—❀❀—

सू०—अनुभूतविषयासंप्रमोषः स्मृतिः ॥११॥

१—देख्या री याद ने स्मृति के' है।

२—जाण्या थका ने पाछो याद करणो याद रो दिखणो है (अणी ने ही स्मृति के' है)।

३—या स्मृति हीज सविकल्प समाधि मे रे' है। जी शूँ वा सविकल्प वाजे। अस्मिता तक स्मृति रे' जाय है। ईं रे पी नी' रे'वा पे निर्विकल्प समाधि व्हेवे है, ने पाछो व्यवहार री वगत मे निर्विकल्प रो स्मृति अथवा सविकल्प री स्मृति रे'वे ही है।

(५) प्र०—अब पाँचवीं वृत्ति जो आपने स्मृति कही थी, उसकी पहिचान की भी कृपा कर आज्ञा करिये।

उ०—अनुभव की हुई वस्तु को याद करना ही स्मृति है।

फेर अतरो पड़े के निर्विकल्प समाधि री स्मृति व्यवहार में प्रवृत्त ही नी व्हेवा देवे, ने व्हेवे वणी वगत सविकल्प समाधि री स्मृति रे' है। ई शूँ योगी रे ससार रो असर नी व्हेवे।

४—अनुभव कीधी थकी वात रो शेमूळी नी भूलाय जाणो ही स्मृति (याद) है। यूं तो सैंकड़ाँ वाताँ आवे, पण अनुभव व्हे'-वणी वात री छाप पड़ जाय, अणी'ज ने सस्कार भी के'वे, ने जतरे सस्कार नी जागे, वतरे वा स्मृति नाम नी पावे। यूं तो "स्मृति संस्कारयोरेक रूपत्वात्" (स्मृति ने सस्कार एक ही-ज व्हेवा शूँ) कियो हीज है। पण पाँच ही वृत्तियाँ एक मूळ (बुद्धि रा भेद) व्हेवा शूँ हरे'क भेद में बाकी रा भेद भी मिल्या थका रे' हीज है। पण गौण प्रधान शूँ ई भेद गण्या है। ज्यूं गुणाँ रा व्हे' है। यूं ही गुणाँ रा सब कार्य में भी व्हेवे हीज है। अणी'ज वास्ते सर्व सर्वात्मक' कियो है। एक एक वृत्ति रा ज्ञान में, एक एक सूत्र री समझ मे साक्षात्कार व्हे' तो जाय है। यूं ही नी है। प्रकृति रो स्पद मात्र ही साक्षात्कार है। क्यूँ के भोग-मोक्ष मय ही, या है।

सू०—अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः ॥१२॥

१—अभ्यास ने वैराग शूँ ई रुके।

२—देखवावाळा रो विचार करणो, ने दिखे जणी रो विचार नी व्हे'णो यो ही न्यारा व्हेवा रो उपाय है।

---

५ प्र०—अब यह आज्ञा कीजिये, कि ये पाँचो वृत्तियें कैसे ठहरती हैं। क्योंकि इनका ठहरना ही योग है।

उ०—अभ्यास और वैराग्य से वृत्तियें ठहर जाती हैं।

३—ई वृत्तियाँ अभ्यास ने वैराग शूँ रुके है अर्थात् अभ्यास वैरागवाळो हरेक वृत्तियाँ ने रोक शके है (ने दूज्यूँ भलेही चावे जो ही करो पण ई नी रुके, ने ई काम माँय ने शूँ जतरो सम्बध राखे वतरो वारण शूँ नीं,) ने यो अभ्यास वैराग चित्त री हीज धर्म है, ने ई तरे' तरे' री वृत्तियाँ हीज सुख री वाजे है। क्यूँके ई वधती वधती पूरा सुख नै प्राप्त कर दे', ने ई'ज ससार री कानी अभ्यास, नै आत्मा कानी वैराग व्हेवा शूँ दुःख ने प्राप्त कर दे'।

४—अणाँ पाँच ही वृत्तियाँ (बुद्धि रा भेदाँ) मे एक शूँ दूसरी सधी थकी है। अणी शूँ अगाँ मायली कणी भी वृत्ति रे शेळभेळ नी रे'णो चावे। दिखत में कोई प्रमाणादि आछी, ने कोई विपर्ययादि खोटी दिखे, पण वणी में शूँ वणी में अवाय जाय है। या वात न्यारी है—के उथता लेताँ लेताँ अलग व्हे' जाणो। ज्यू-चालताँ चालताँ ठिकाण पूग जागो। अणी'ज रो नाम अभ्यास वैराग्य वाजे है। या प्रमाण वृत्ति री तरकी समझणी चावे। अणी में एक ठिकाणो विपर्यय नै छोड़ प्रमाण कानी वीर (रवाना) व्हे' णो है, ने हरे'क विचार-पावडो है। ई पावडा ही अभ्यास वाजे है। एक ठिकाणा शूँ छेटी पटकणो, ने एक रे नजी'क ले'जाणो वैराग्य ने अभ्यास वाजे है। अणां दो ही कदमाँ शूँ जीव शिव ने पाय ले' है, ने जठी मूँडो करे, वठी अणां शूँ पूगे है, नै मुकाम पे पूगाँ केड़े दो ही पावडा ठे'र जाय है, ने बैठ्याँ पे तो समट ने पग भेळा व्हे' जाय है। याही असंप्रज्ञात समाधि वाजे है। अणी कानी वी'र व्हे'णो अभ्यास वैराग्य है। ई रो ही नाम अक्लिष्ट वृत्ति है और अणी शूँ विपरीत क्लिष्ट है।

सू०—तत्र स्थिता यत्नोऽभ्यासः ॥१३॥

१—वणी में स्थिर रे'वा री कोशीश ने अभ्यास के' है।

२—देखवावाळा रे मूँडा आगे, मन ने वण्यो राखणो, देखवावाळा रो विचार करणो वाजे है (ई ने ही अभ्यास के' है।)

३—दृष्टा में थिर रे'वा री खेवट रो नाम अभ्यास वाजे है। अबे या विचारणी चावे के अणी रे वास्ते बारली चीज री कई 'जरूरत है। दृष्टा है हीज' अणी री खेवट या हीज है। जदी' ज लड़ाई में भी अणी रो उपदेश अर्जुन ने व्हियो।

"ईं शूँ सदा म्हने हीज याद में राख ने लड़",
जदी हर वगत यो अभ्यास व्हे' शके है', यो अभ्यास रो लक्षण व्हियो, ने प्राणायाम आदि ने आसन आदि योग रा अष्टांग है। वी क्रिया-योग व्हेवा शूँ वर्णा रा अभ्यास रो वर्णन आगे आवेगा। यो तो सुरता रो साधन है अर्थात् समाधि पाद है। ईं में स्थूल साधन री कानी ओशान नी' है।

४—दूसरी विपर्ययरी चाल वचे या योग री गत न्यारी'ज है। वणी में चालवा रो उपाय ही अभ्यास है। अणी में ठे'रवा रो उपाय ही अभ्यास है। 'ठे'रवा में कई मे'नत? यो तो स्वभाव हीज है। पण अणी में विपर्यय व्हे' जावा शूँ अभ्यास री वगत

प्र०—तब अभ्यास किसे कहते हैं पहले यह बताइये?

उ०—दृष्टा में स्थिति के लिये जो यत्न है, उसे ही अभ्यास कहते हैं योग के लिये यत्न करना अभ्यास है।

भी जाणे 'आपण' कईक पावा रो उपाय करां, अथवा ठे'रवा रो उपाय करां' यूं 'करां करां' जो प्रकृति रो स्वभाव है, वणी रो साक्षी तो चोड़े ही अविचल, (थिर) सदा एक रस है हीज। अणी में अभ्यास री कई आवश्यकता है? पण के'वे के खोट याद व्हे'गी', ईं ने भूलवा रो ही उपाय अभ्यास वाजे है। अभ्यास करणो यो हीज है, के अणी में कई करणो ही'नी है, यो तो स्वतः सिद्ध है, या वात करवा लागे जदी वार वार आवे यो ही अभ्यास वाजे है। ईं ने ही भगवान हुकम करे के :—

"कर्म की धावना कोई कर्म शूँ छूट नी शके।
कोरा ही छोड़बेठयाँ शूँ लाभ होवे कई नहीं।"

अणी रो भाव अविपर्यय व्हे'णो थिर, ने थिर जाण लेणो ही सांख्य है। अणी रो अभ्यास मन में उत्साह आयो, ने शुरु व्हियो, ने उत्साह श्रद्धा शूँ, ने श्रद्धा सगति शूँ है। सेठ रो छोरो बुद्ध रा दर्शन शूँ ज्यूं सुधरयो।

सू०--सतु दीर्घ-काल-नैरन्तर्य्य-सत्कारा सेवितो दृढभूमिः ॥१४॥

१—वो अभ्यास, बरोबर घणा समय में उत्साह (उमंग) शूँ करवा शूँ पाके है।

---

५ प्र०—वह अभ्यास कब तक करना पड़ता है?

२—यो घणा समय तक बरोबर उमंग शूँ ने अणी मे हीज लागा रे'या शूँ अचल व्हे'जाय है। पछे यो अभ्यास जम जाय है। ईं ने ही दृढ़ भूमि वा पूर्ण अभ्यास के' है। पछे अभ्यास नी' करणो पड़े है।

३—कोइ के'वे, जदी तो म्हाँ योगी व्हे'गयो ! क्यूँ के-'द्रष्टा है हीज' या जाण लीधी। वणाँ ने चावे के या जाग लीधी, या भी जाण लीधी, यूँ सब ही जाण लीधी, जदी आप जाण लेवावाळा कुणरिया ? आप तो "अहं" वृत्ति हो, ने या जतरे जाणवा वाळा रे आकार नी व्हीं', जतरे तो वृत्ति हीज है, ने अभ्यास भी वृत्ति है, जतरे बरोबर नरा समय तक उमंग शूँ करवा शूँ पाके है। जदी'ज द्रष्टा री आँपणाँ रूप में मुकाम व्हे' है। ईं शूँ बरोबर करता रे'णो (अर्थात् देखे सुणे तथा सूँघे) ने नराई समय तक, ने उमंग शूँ करवा शूँ यो अभ्यास सिद्ध व्हेवे है। यूँ हीज सब अभ्यास ही है। नानो बाळक हाथाँ पगाँ ने हलाय ने करोट लेवा रो, ने वीं शूँ गडोळ्याँ (गोडा रे बल घालवा) रो, ने फेर थड़ी (खड़ा व्हेवा) रो अभ्यास करने दोड़वो सीख जाय है, यूँ ही उत्तम अभ्यास ही उन्नति रो मूळ है।

(४) यो अभ्यास तो है, पण सदा ही अभ्यास हीज नीं रे'वे है। पछे तो यो स्वभाव व्हे'जाय है—साँच में समाय जाय है। जठा केड़े तो कई खतरो नी रे'वे। अणी'ज रो नाम अविसव

उ०—यह अभ्यास स्थिर (दृढ) तो तब होता है, जब बराबर (लगातार) बहुत समय तक यथाविधि (उत्साह) पूर्वक किया जाय।

विवेक ख्याति है, ने ई ने दृढ़ भूमि भी के' है। शंकर भगवान री यो वचन याद राखवा जस्यो है, के-'सिद्ध री स्वभाव, साधक री साधन है'। वो साधन यूँ है, के थोड़ा'क दिन करने हीज नी छोड़णो अथवा थोड़ा समय तक हीज नी, पण निरंतर अभ्यास में घलमल (एकमेक) व्हे' जाणो अथवा ऊपरला मन शूँ नी, पण अंतस शूँ करणो, ने चोमेर शूँ पसार पड़णो। यूं याग री सेवन व्हे' तो पछे नी डगे। ई में कई कसर रे' तो डगाय जाय। अने सिद्ध रे, तो श्रद्धा शूँ सहज ही या दृढ़ भूमि है हीज। क्यूँ के, सत्य, दीर्घ काल—अनन्त काल शूँ निरंतर है ने सत्कार श्रद्धा भी है, तो सत्य री हीज, ने चोमेर शूँ ही या वात है। अणी सिवाय और व्हे'हो कई शके। जदी वणी रे दृढ़ भूमि व्हेवा में कई कशर री'। कई दृष्टा दृश्य सिवाय अन्य भी है! ने अणी सिवाय और भी कई करणो है? अभ्यास रा आठ भेद है-वणाँ ने योगांग (यमादि) भी के' है। सांख्य में अणां ने हीज धर्म, ने सिद्धि भी की' है। ऊह्यादि सिद्धि घणा री नाम है। पण योगांग भी वणां रे मांयने आयगया। क्यूँ के, अणा विना वी नी, ने अणाँ विना अणिमादि नी व्हे'। दृढ़ में ई नी, पूर्व में व्हे' है।

प्र०—दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकार-संज्ञा वैराग्यम् ॥१५॥

१—देखी शुणी चीजाँ मे तृष्णा नी व्हेवा रो नाम वशीकार वैराग है।

२—देखी शुणी वाताँ मे लालसा नी' रे'णो तरगाँ रो विचार नी व्हे'णो वाजे है (ईं ने ही वशीकार वैराग भी के' है)।

३—अबे वैराग दो तरे' रो है-एक तो ससार ने नाशवान जाण वृत्ति हट जाय, ने यूँ ही सब मिटे है, यूँ जाण स्वर्ग मे भी रुचि नी' रे', सो वैराग वशीकार नाम रो है, नै नीचो है।

४—वैराग दो तरे' रो अठे कियो है। वणी में भी अणी वैराग वशीकार रा दो भेद व्हे' है। वाह्य, ने आध्यात्मिक, अणाँ ने तुष्टि भी के' है। ४-५ अणाँ रा भेद है। यू ९ भेद व्हिया देखी वाताँ में इच्छा द्वेष नी व्हे', ने उपराम, ने शुणी सुख री वाताँ मे भी यू ही उपराम रो नाम ही वशीकार वैराग वाजे है। वो उपराम पाँच तरे'रा विचार शू व्हे'है। अर्जुन रक्षणादि वाँरा नाम है। यू ही यतमान आदि पे'ली मन री हालताँ तीन तरे' री व्हे'है। वणी वैराग शूँ परमार्थ कानी चालवारा अभ्यास मे फोरापणो जणाय, यो जतरो ओछो व्हे' वतरो ही भारी पणो रे' है।

प्र०—अच्छा तो अब कृपा कर यह भी बताइये कि वैराग्य किसे कहते हैं?

उ०—देखी और सुनी वस्तु मे चित्त का चालायमान न होना (स्थिर रहना) वैराग्य कहाता है, इसे ही वशीकार वैराग्य भी कहते हैं। (नोट) इसी को अपर वैराग्य भी कहते हैं।

सू०—तत्परं पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम् ॥१६॥

१—आत्मज्ञान शूँ जो गुणाँ में भी तृष्णा नी व्हेवे, वो परम वैराग है।

२—देखे जणी रे कानी, मन व्हे' जावा शूँ तरंगाँ री लालसा नी रे'णो, यो तो महा सुख ही है (ई ने ही परम वैराग के'है)।

३—आत्मा रो यथार्थ ज्ञान व्हे'जावा शूँ प्रकृति रा सब गुणाँ में भी रुचि नी रे' यो परम वैराग है। भोगाँ ने छोडवा पे भी भोगाँ री वासना रे'। वासना नाश व्हे' अथवा परब्रह्म मिले, जदी। आज काले मनरा द्वेष ने, वैराग मानवा लाग गिया है। परन्तु वैराग रो मतलब है, संसार में शूँ वृत्ति रो फिर जाणो (हट जाणो-वृत्ति री संसार में नी उळझणो। पण आज काले संसार शूँ चरड़वा ने, वैराग माने है, या भूल है। चरड़वा ने तो द्वेष के'वे है, ने यो तो दोष मान्यो है; सो, आगे पा० २ सू० ८ में आवेगा।

प्र०—यह वैराग्य कब पूरा हुआ समझना चाहिये ?

उ०—यही वैराग्य जब इतना बढ़ जाता है कि प्रकृति के गुणों (दृश्यमात्र) में भी तृष्णा नहीं रहती, तब इसे परवैराग्य कहते हैं। ऐसा पर (पूरा) वैराग्य आत्मज्ञान से होता है, अर्थात् आत्मज्ञान होने पर जब गुणों में भी तृष्णा नहीं रहती तब उसे परवैराग्य कहते हैं। और यही वैराग्य की अवधि है।

(नोट) पाँचों वृत्तियों से द्रष्टा का अलग ज्ञान ही परवैराग्य (परमयोग) है।

४—वो पर वैराग्य वाजे है, जणी मे गुणाँ मे भी तृष्णा नी रे'। गुणाँ री तृष्णा गुणाँ शूँ न्यारा पुरुष रो भान नी व्हे' जतरे नाश व्हे'ई नी शके। अणा वशीकार, ने पर वैराग्य ने हीज भगवान् सांख्य, ने योग, ने कर्मयोग, ने ज्ञानयोग वा अनेक नामाँ शूँ गीता जीमें समभाया है ने **"विषया विनिवर्तन्ते"** मे वशीकार, ने पर, दोई वैराग स्पष्ट फरमाया है। विवेक ख्याति भी अणी रो हीज नाम है। यो जाणे कठी ने शूँ नरो ही निकळ आवे है। अणी वास्ते अणी ने ज्ञान प्रसाद मात्र वा भगवदनुग्रह हीज मानणो पड़े है। ज्यूँ भगवान् रा जन्म रे साथे ही पे'रावाळा, ताळा, कमाड़, वेड्याँ आदि कुल आवरण आपो आप ही खुल गया, यूँ ही अणी शूँ एकी'साथे कृतकृत्यता आयजाय है। यो ही कैवल्य है,–ईं सिवाय नी।

सू०—वितर्कविचारानंदास्मितास्वरूपानुगमात् संप्रज्ञातः ॥१७॥

१—तर्क, विचार, आनंद ने अहंता सहित जो समाधि व्हे', या संप्रज्ञात वाजे है।

२—भे'म रे साथे, विचार रे साथे, सुख रे साथे, ने म्हूं-पणा रे साथे जतरे देखे, जणी रो विचार रे'वे वतरे अखंड महा सुख

प्र०—हे भगवन् कब तक अभ्यास वैराग्य को अपूर्ण समझना चाहिये।

उ०—वितर्क (स्थूलभावना) विचार (सूक्ष्मभावना) आनंद (सुखभावना)

नी समझणो (अणां ने ही विवर्कानुगत, विचारानुगत आनदा नुगत, ने अस्मितानुगत, सम्प्रज्ञात समाधि भी के' है)।

३—पे'ली तर्क व्हेवे, पण घो भी ससार री कानी रो नी, पण आत्मभान मिल्यो थको रे' है, ने वो तर्क भीणो पड़वा शूँ विचार वाजे है। ईं में फेर आत्मा रो खुलासो वत्तो व्हेवे है-या भी सही व्हेवा शूँ आनन्द वाजे है, नें अणो शूँ भी वारीक व्हेवा शूँ अहंता, अस्मितामात्र रे' जाय है। इ चार तरे'री समाधि/वाजे है। अणाँ चार ही हालतों ने सविकल्प या संप्रज्ञात समाधि भी के' है। क्यूँ के वृत्ति-सुरता ब्रह्म री कानी उलटी तो खरी, पण पड़ दो रे'गयो। ज्यूँ-ब्रह्म रे वास्ते तर्क करवा लागा। देखे सो ब्रह्म ही है। क्यूँ के, देखवा रो काम तो और रो नी व्हे' शके। अणां ने वितर्कवाळी समाधि वा योग के' है। पण या हीज वात वारीक व्हे', ने अंतस में आवे जदी विचार युक्त योग के', ने जदी सुरता वत्ती देर ब्रह्म री कानी रे' ने विचार री कानी आवा में देर करवालागे, जदी आनंद वाळी समाधि वाजे है। फेर आनंद भी वर्णा री कानी रे' रे' ने आनंद रो भान व्हे'तो जाय वा अहंता (अस्मिता)-वाळी समाधि वाजे है। ज्यूं कणी सुख री वात शुण ने कही के 'म्हने यो सुख मिल गयो, ईं में फर्क तो नी है ?' यूँ विचार व्हे'णो, पे'ली वितर्क री समाधि वाजे है। नी,

---

अस्मिता (अहंभावना) के सहित आत्माकार वृत्ति हो, तब उसे संप्रज्ञात निरोध (समाधि) कहते हैं। इसमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठ है। यहां तक अपूर्ण

फरक तो नी व्हे'गा, यूँ व्हे' सो विचार वाळी समाधि वाजे है। अणाँ ने कपिलगीता में भीति, विक्षेपता, गता, याता ने लीनता की' है। ज्यूँ सासरे जावा में स्त्रियाँ ने ब्हियाँ करे है-पे'ली भय, पछे जाणो, ने पछे वठे अधिक रे'णो, ने पछे वणी ने हीज घर समझ ले'णो। अणी रे आगे री हालत रो अर्थात् असंप्रज्ञात निर्विकल्प रो आगे वर्णन आवे है। वशीकार नाम रा वैराग शूँ ई च्यार प्रकार री समाधियाँ व्हे' है।

४—यो परम वैराग्य नी व्हे' जतरे, ने वशीकार वैराग्य व्हे' जतरे संप्रज्ञात नाम री समाधि वाजे है। संप्रज्ञात में भी जणाय, पण गुण रो दर्शन नी व्हेवा शूँ वितर्क आदि शूँ मिल्यो थको साक्षात् व्हे'जणी शूँ छूटवो, ने आयो अणी में व्हे'तो रे', जणी शूँ ईं बुद्धि में हीज च्यार ही भेद रे'है-**"यो बुद्धेः परतस्तुसः"** नी व्हे'। अगी में वितर्क में म्होटो, विचार में बारीकी, ने आनंद में सुख, ने अस्मिता में केवल आपो हीज रे'जाय है। पे'ला में ऊपरला च्यार ही रे'। पण ऊपरला में नीचला छूटता जाणा चावे हीज। क्यूँ के, प्रकृति रो क्रम ही यो है। यूँ नी व्हे'तो कोई छूट ही (मोक्ष ही) नी शके, ने छूट्या भी पाछा पड़ जाय। पण नीचा में ऊंचो है, पण ऊँचा में नीचो नी है। ज्यूँ पृथ्वी री आकर्षण वारणे खेंच नी है।

अभ्यास वैराग्य समझना चाहिये। इन में थोड़ी बाह्यवृत्ति का बीज रहता ही है।

सू०—विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कार-शेषोऽन्यः ॥१८॥

१—अणीं शूँ आगे ज्या समाधि परम वैराग्य शूँ थिरता रा स्वभाव वाळो व्हे'है, जीं में केवल संस्कार हीज रे'जाय, वा असंप्रज्ञात वाजे है।

२—यूं देखे जगी में मन लाग ने ऊपरली च्यार ही वातां न्यारी व्हे'जाय, यो ही अखंड महा सुख है (अणी ने हीज संस्कारशेष वा असंप्रज्ञात समाधि भी के' है)।

३—या समाधि पर वैरागवाळा रे व्हे'है। ईं ने ही असंप्रज्ञात के'वे है। ज्या आत्मा में अधिकाधिक ठे'र जाय, ज्यूँ स्त्री ने पति पे प्रेम व्हे'जाय, जणी शूँ पी'र (पीहर) सुहावे ही नी। केवल पी'र है, अतरोक कठी ने ही संस्कार ही रे'जाय है। अणी में भी आत्माकार वृत्ति अशी व्हे'के वारणे आवणो पसंद ही नी करे सिरफ प्रारब्ध रे'वा शूँ वीं में संसार रो व्यवहार व्हे'है। अणी'ज समाधि रो छेटो शूँ वर्णन करवावाळा शून्य के'दे है। परन्तु या शून्य नी, पण अधिक स्पष्ट है। अगी रे मूंडा आगे अवार जगी ने स्पष्ट गणाँ हाँ, सो ही संसार शून्य सरीखो लागे है; विराम प्रत्यय के'वे है, ठेरवा रो निश्चय अणी अभ्यास शूँ अर्थात् आत्मा

प्र०—हे भगवन्! तो अभ्यास वैराग्य को पूर्ण हुआ कब समझना चाहिये?

उ०—आत्माकार वृत्ति होने से आत्माकारता का ही वृत्ति को अभ्यास हो जाता है, उसी दृष्टा के अनुभव युक्त वृत्ति का रह जाना ही

थिर है, वणी में निश्चय रा अभ्यास शूँ अर्थात् वणी री थिरता दीखवा शूँ केवल थिरता मात्र अर्थात् आत्मभान री ही जणी में सत्ता है (संस्कार है), अशी या समाधि असंप्रज्ञात वाजे है।

४—च्यार ही तरे'री संप्रज्ञात समाधि की', अणी सिवाय एक अणी शूँ अनोखी ही समाधि है, वणी ने ईं ने देखताँ भलें ही के'दाँ', पण है, तो महासंप्रज्ञात भी वणी में पुरुषाकार वृत्ति व्हेवा शूँ, ने पुरुष जो प्रकृति शूँ विलक्षण, ने सलक्षण व्हेवा शूँ वणी प्रकृति रा आभड़ शूँ छेटी, ने निरंतर नखे रे'वा शूँ वृत्ति एकदाण भी या हालत पावाँ केड़े, वणी मजा ने नी भूलाय शके

"तस्याहं न प्रणश्यामि सच मे न प्रणश्यति ।
यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ।
यस्मिन् स्थितो न दुखेन गुरुणापि विचाल्यते।।"

अश्यो संस्कार रे'जाय, वा, तो दशा (हालत) ही न्यारी है। यो ही योग परम है। संप्रज्ञात रो ही संप्रज्ञात, ज्ञान रो ही ज्ञान यो है, ने अणी रे आगे यो ज्ञान ही अज्ञान है, वा अणी जड़ ज्ञान शूँ संप्रज्ञात कूंकर? ने बुद्धि शूँ परम विराम प्रत्यय है, वणी रा तीन भेद है, सो दोय'तो आगे १९ में किया। जी बुद्धि में आवेगा, ने एक यो, जो बुद्धि शूँ पर है। १८ मों, ने २० मो बुद्धि शूँ पर व्हे'गा, उपाय प्रत्यय यो वाजे है। अणी'ज में शून्य रो भान मिटे है, अणी रो ही नाम विराम प्रत्यय वा संस्कार है।

असंप्रज्ञात निरोध कहा जाता है (यहीं अभ्यास वैराग्य पूर्ण हो जाते हैं)। ०

सू०—भवप्रत्ययो विदेहप्रकृतिलयानाम् ॥१६॥

१—जी प्रकृति में लय व्हिया है, या विदेहलय व्हिया है, वणाँ में जन्म रो बीज है ॥

२—यूँ ही, जी भे'म ने विचार रे, या आनंद ने म्हूँपणा रे साथे हीज ठे'र जाय, वणां ने पाछो जन्म लेगो पड़े है (ई बिदेह, ने प्रकृति लय वाजे है, अणाँ री या थोड़ी'क ठे'रवा री कशार भव प्रत्यय भी वाजे है)

३—पे'लों जो असप्रज्ञात समाधि रो वर्णन आयो, वणी शूँ कतराक ने अस्यो अंदाज वंधे है, के वणी में शरीर री ओशान नी रे'वा शूँ अथवा कोई अठा री नांई म्होटो सुख मिलवा शूँ, ने वणी में मन लाग जावा शूँ अठीरी (बारली) ओशान नी रे'ती व्हे'गा, जीं शूँ, वणी ने असंप्रज्ञात (अठा री ओशान वना री) समाधि के'ता व्हे'गा। जणी पे अणी उगणीश माँ सूत्र शूँ यूँ चेतावे, के यूँ ओशान नी रे'णो असंप्रज्ञात समाधि नी वाजे है। क्यूँके अणी में तो बारीकी शूँ बीज में रूँख री नांई, संसार री उत्पत्ति छिपी थकी रे' है, शो चौमासा रा चारा ज्यूँ पाछा जन्म मरण रा भूँगा फूट जाय है। अणी वास्ते कणी भी विषय में मन लाग जागो, ओशान विना री (असप्रज्ञाय) समाधि ना वाजे है। क्यूँके वणी में छिपी थका ससार री ओशान है। पण आत्मा रे सरोखो वृत्ति व्हे'जाणो ही असप्रज्ञात समाधि है,

---

प्र०—जब इसी असंप्रज्ञात (पूर्ण योग) को न पाकर कोई संप्रज्ञात (दरजे) तक ही आकर ठहर जाना है तो उसकी क्या दशा

या याद राखणी चावे। अणी रो ही गीताजी में वर्णन है, के—

"अनंत सुख दीखे वो बुद्धि शूँ इन्द्रियाँ विनाँ"

ईं रो भाव यो है, के द्रष्टा (आत्मा री ओशान) जणी वृत्ति मे नी, वणी में ससार रो (जनम मरण रो) बीज अवश्य है, या याद राखणी। पे'ली सप्रज्ञात, ने पछे असंप्रज्ञात समाधि की' ने वचे ठे'र जावारी असंप्रज्ञात भी चेताय दी दी। आगे या वतावे है, के विश्वास आदि वीश मां सूत्र मे किया, वणाँ विना योग में चालणी ही नी आवे, ने वणाँ में फरक रे' जावा शूँ वचे, रुकाय जाय, वा हीज अठे उगणीश माँ सूत्र में की' ज्या समाधि है।

"पाछा फेर धरे जन्म पाया जो ब्रह्म लोक भी।
म्हने पायाँ पछे पाछा कोई जन्मे कदी नहीं॥"

४—संप्रज्ञात रा मुख्य च्यार भेद वताया, असंप्रज्ञात रा दो भेद है, निर्बीज असंप्रज्ञात तो परम वैराग्य शूँ पुरुष ख्याति व्हेवा पे, अणी शून्यता रहित साक्षात्कार री हालत है। दूसरी सबीज असंप्रज्ञात है। वणी रा भी फेर दो भेद है,—भव-प्रत्यय, ने उपाय-प्रत्यय। ने साँची असंप्रज्ञात (निर्बीज) ने तो पुरुष प्रत्यय के' शका हाँ। अणाँ में भव संसार रा निश्चय वाळो विदेह, देवता, न प्रकृति मे लीन व्हिया थका रे व्हे' है। अणाँ ने ब्रह्मानन्द जस्यो भान व्हे', पण वचे थाड़ी भव-प्रत्यय री भार रे' जाय, जणी शूँ वणाँ ने आवणो पड़े। पण उपाय साधन रो निश्चय रे' जी योगी वाजे है। वणाँ रो वर्णन आगला सूत्र में है। भव-प्रत्यय

होती है ? बहुत से जन्म से ही विना साधन ही योगी होते हैं इसका क्या कारण है ?

वैराग वाळा ने व्हे' है, पण यो वैराग वशीकार मायलो ह
"वैराग्यात् प्रकृतिलयः, संसारो भवति राजसात् रागात्"
ई दोई है। अणी में फनराक अणी कारिका रो अर्थ भी करे है।
सासिद्धिक (?) भव-प्रत्यय वाळा ज्ञानादि स्वाभाविक ही व्हे', वी
प्रकृति रा उपाय प्रत्यय वाल योगी। शून्यता रा भान रो नाम
ही ज बीज है। यो पूर्ण प्रज्ञ ख्याति विना किस्तरे ? या भाव है।

सू०—श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञापूर्वक इतरेषाम् ॥२०॥

१—दूजाँ रे विश्वास, ने वीं शूँ कोशिश, ने ई शूँ याद, ने याद शूँ समाधि (सविकल्प), ने ई शूँ सत्य दृष्टि व्हे'ने निर्विकल्प समाधि व्हे' है।

२—विश्वास, उमग, याद, ने ज्ञान री समझ शूँ महा सुख पावणी आवे है।

३—जणाँ रे जन्म रो बीज नी रे' अर्थात् उगणीश मा सूत्र में कही, वशी समाधि वाळा शूँ दूजा रे अर्थात् द्रष्टा मे तदाकार-वृत्ति-वाळा रे असम्प्रज्ञातसमाधि कूकर व्हे'है ? यणी पे के'है, के वणा रे विश्वास अर्थात् 'द्रष्टा है हीज,' यो विश्वास, ने ई विश्वास

(५) प्र० बीच में अटक जाने वाले योगियों का आपने फिर जन्म होना कहा, तो किस उपाय से योगी बीच में न अटककर असंप्रज्ञात समाधि पा लेता है ?

याद, ने शान्ति, अणी शूँ अणी परम वैराग्यवाळी समाधि ने पावे है। आर नी पावे जतरे वणारे ई उपाय री निश्चय माँय . ने शूँ उमंग अर्थात् तदाकार करवा री हांश, ने यणी शूँ याद। भाव यो-के 'दृष्टा हूँ,' अणी विश्वास शूँ आपो आप उमंग व्हे' है, ने उमंग शूँ दृष्टा रे आकार री वृत्ति व्हे' जाय, ने पाछी वारणे आवा पे, दृष्टा हूँ' अणी विश्वास शूँ वृत्ति दृष्टा री कानी आवे, ने यूँ आया शूँ उमंग वधे, जणी शूँ फेर अधिक नजीक अर्थात् दृष्टा रे आकार वृत्ति व्हेवा ने घों शूँ दृष्टा रे आकार व्हेवा री याद (स्मृति) रे'या लाग जाय, ने या याद ही अधिक रे'णो समाधि स्थिरता है, ने स्थिरता शूँ पछे असो स्थिरता व्हे'जाय, के दृष्टा ने छोड़ने वृत्ति और जगा जाय ही नी, या ही' असंप्रज्ञात समाधि वाजे .है । अणी असंप्रज्ञता में,ने जन्मदेवा वाळी असंप्रज्ञात में नरोई फरक है । या तो दृष्टा रे आकार वृत्ति व्हेवा शूँ व्हे' है, ने या दृश्य रे आकार व्हेवा शूँ व्हे' है, ने दृश्य रे आकार वृत्ति रो व्हे'णो. एक तरे' री नींद है, ने दृष्टा रे आकर व्हे'णो एक तरे'रो जागणो है; अर्थात् यो मरणो है, ने यो जीवणो है। ऊपरे कही थकी वातां विना योग में चालणी ही नी आवे, ने अणाँ में फरक रे'जावा शूँ यथे ही रुकाय जाय। वो जाणे, के 'म्हूँ योगी', पण यो योग रो रोगी

उ॰ प्रथम तो योग में श्रद्धा ही मुख्य मानी गई है, इससे उत्साह पढ़ता है। उत्साह (वीर्य) से स्मृति (याद) रहने लगती है। याद से शान्ति और सत्य का अनुभव मिलता है। शान्ति अनुभव से फिर अधिक श्रद्धा (विश्वास), उत्साह

व्हे'जाय है। ईं शूँ अणाँ री जतरी दौड़ व्हे' वतरो ही योग नजी'क है, या वात आगला सूत्राँ में वतावे है।

४—उपाय-प्रत्यय में श्रद्धा (उत्साह), वळ (मजवूती), वण्यो रे' है। पण वेरागी रे वो मिट जाय, जणी शूँ यो भेद वतायो। अणां में भी मुख्य श्रद्धा है, पछे सब आपोआप आवता जाय, ने दिन दिन एक शूँ एक वधता जाय, ने यूँ योगी परम वैराग्य शूँ पावा री परम समाधि—जो पुरुष ख्याति शूँ गुण वैतृष्ण्य है,—वणी ने पाय लेवे। अणी वास्ते रुप-प्रत्यय, भवप्रत्यय, ने उपायप्रत्यय, तीन समाधि व्ही'। यणाँ में दो में गुण तृष्णा रे' जाय, ने एक में नीं रे'वे। अवे आँपाँ रे उपादेय (कामरी) तो उपाय-प्रत्यय ही री'। क्यूँ के मुकाम पाया रे कई चावे, ने वैरागी रे चाल ही नीं रे', वो तो तुष्टि में ठे'र जाय। जदी वाकी उपाय-प्रत्यय ही मुख्य रो'। वणी'ज पे आगे विचार कीधो जाय है। या हीज वात कर्म छोड़वा पे—अर्जुन ने भी भगवान समझाई ही के 'भव-प्रत्यय में मती जा, उपाय-प्रत्यय शूँ पुरुषप्रत्यय मिले।'

याद और शान्ति अनुभव मिलकर यों योगी आगे से आगे बढ़ता हुआ परम समाधि (परमशान्ति) (असंप्रज्ञातनिरोध) को प्राप्त कर लेता है। क्योंकि "श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्" (गीताजी)

---:०:---

सू०—तीव्रसंवेगानामासन्नः ॥२१॥

१—खूब वेगवाळा रे झट ही।

२—तेज चाल वाळा रे महासुख मिलवा में देर नी लागै। (ई ने तीव्र संवेग के'है)।

३—पण पे'ली श्रद्धा, फेर उमंग (उत्साह), फेर स्मृति (याद), फेर थिरता, ने पछे अडिग थिरता व्हे'है। यू तो अणी अडिगता ने पावा में नरी छेटी दीसे है। अणी पे भगवान सूत्रकार आज्ञा करे है, के खूब वेग व्हे' वणी रे तो झट ही या समाधि प्राप्त व्हे'जाय है। ज्यूं–कोई चित्तौड़ शूँ उदयपुर जाणो चावे, तो वचला गेला रो हाल शुण ने यूं पूछे, के कतरा दिन में उदयपुर पूग शकूं हूं? तो वणी ने पाछो यूं हीज पूछणो पडे, के थूं कूँकर जाणो चावे है? गाड़ा में जायगा तो वणी माफिक जायगा यूं हीं रेल, मोटर, विमान में अधिक शूँ अधिक जल्दी पहुँच शके है। यद्यपि उदयपुर ने चित्तौड़ रे वचे साठ हीज मील है, पण जावा रो जरियो जश्यो तेज व्हे'गा, वशी ही तेजी शू वी मील भी ते' व्हे'जायगा। यू ही द्रष्टा री कानी वृत्ति रो वेग जतरो अधिक व्हे'गा अर्थात् विश्वास जतरो तेज व्हे'गा, वतरी ही झट या अडिग समाधि प्राप्त व्हे'जायगा। क्यू के सूत्र में सवेग पद दीधो है। वणी रो मतलब है, ठीक वेग अर्थात् द्रष्टा री कानी वेग। दूज्यूं तो नराई दुनियाँ में वेग व्हे'हीज है, ने परमारथ

(५) प्र०—इस प्रकार बढ़ते हुवे योगी को परम योग (असंप्रज्ञात समाधि) प्राप्त करने में कितना समय लगता है। (कितने समय में परमयोग मिलता है,—परम शान्ति मिलती है?

फानी भी हठ तपस्या रा तेज (वेग) नराँ रा ही व्हे'होज है। पण धी संवेग नी वाजे है। क्यूके ठीक ठीक वेग नी है, ने श्रणी में जतरो कसर है, वतरो ही फेर चक्कर पड़े है।

"विश्वासी ज्ञान ने पावे, लागे जो थिर चित्त शूँ।
ज्ञान रे साथही शान्ति, आवे जावे कदी नहीं"

श्रणी में श्रद्धा, विश्वास, सिवाय और कणी री जरूरत के' शकाँ! क्यूके श्रठे तो रत्ती भरी भी छेटी नी है, पण विश्वास री'ज छेटी है। आश्चर्य यो है, के विश्वास में भी श्रणी'ज शूँ विश्वास व्हे'है। (मनख कतरा ही सही वात पे विश्वास नी करे, पण गलत वात पे विश्वास करे, कई या वात सही है, के आँपाँ न जोगा हाँ ?) संवेग तो भवप्रत्यय वाला रे भी है, पण तीव्र नी व्हेवा शूँ आसान नी है।

४—श्रद्धादि संवेग वाजे है। ई तीव्र व्हे'तो वा श्रठार मी समाधि नरे हीज समझणी चावे। योग ने, सांख्य प्रवचन कियो है, जीं शूँ सांख्य शूँ मिलाय ने श्रठे समझणो सूघो पड़ेगा। सांख्य मे चित्त ने, बुद्धि के'है। बुद्धि ने प्रत्यय एक रा ही नाम है। श्रणी री वृत्तियाँ ने, बुद्धि रा भेद या भाव वा बुद्धि सर्ग वा प्रत्यय सर्ग के'है। वणी रा आठ भेद है। जणी मे चार सात्विक है—धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य। श्रणी शूँ ऊँधा तामसिक भेद है। जी योग में लेण नी कीधा है। श्रगाँ में धर्म ने योगांग एक ही वस्तु है, ने वणी शूँ ऊर्ध्वगति व्हे'है। वणी ऊर्ध्वगति रा बाकि ज्ञान, वैराग्य

उ०—जिनका वेग (गति) तीव्र (तेज) है, उनके योग प्राप्त हुआ ही (पास ही) समझिये।

आदि तीन भेद है। वर्णा में ज्ञान तो सू० १६, १८, मे कियो, ने यूं ही विदेह लय रे १९ मां में ऐश्वर्य कियो। अने तीन ही पुरुपप्रत्यय भवप्रत्यय, ने उपाय-प्रत्यय में मुख्य उपाय-प्रत्यय योगाभ्यास ही रियो। ईं रो ही विवरण आवे है। जीं शूँ योगी ने उपाय, धर्म, योगानुष्ठान, ध्यान लगाय ने श्रद्धा युक्त के'णो, यो भाव सांख्य, योग, गीता, आदि सर्व सम्मत है। सिरफ सांख्य, वो उपाय समझ लेणो (ज्ञान) ही माने है। योग के'है, तो यो हीज, पण जरयो अधिकारी व्हे'वरी भूमिका शूँ हीज चाल शके है।

सू० मृदुमध्याधिमात्रत्वात् ततोपि विशेषः ॥२२॥

१—थोड़ो, मँमेलो, वहुत ज्यादा शूँ ई शूँ भी झट।

२—अणी तेजरा भी तीन भेद है—धीमो तेज, मामूली तेज, ने खूब तेज अणाँ ने ही मृदु, मध्य, ने अधिमात्र भी के' है।

३—अणी वेग रा हीन भेद शूँ छेटी नजीक द्रष्टा ने के' शकाँ हाँ, ने छेटी नी यूँ द्रष्टा री प्राप्ति व्हेवे है। नजी'क, ई शूँ भी नजी'क, सब शूँ नजी'क द्रष्टा है। मनस रो स्वभाव व्हे'है, के आँपणो कोई निश्चय कर लेगो, ने वणी रा हीज सचा में सब वाताँ विचारणी। ऊँचो अधिकारी सही-वात ने झट पाय लेवे है, गलती ने बिलकुल छोड देवे है। कतराक नीचा अधिकारी नीची वात ने हीज पकडे है। पे'ली तो वी ऊँची वात ने माने ही नी;

(५) प्र० कितने ही शीघ्र समाधि पा लेते हैं कितने ही देर में और कितने ही उस से भी अधिक विलंब में इसका क्या कारण है।

माने तो आप ने सदा अयोग हीज माने । अणी शूँ वो सब शूँ नीचो साधन हीज अंगीकार करे, ने वो भी निश्वास, उमग, याद, थिरता शूँ नो, पण अमलदार री नाई । ज्यूँ—

वाळपणाँ है खेल्यो कूद्यो म्होटयारपणे हळ हाँक्यो ।
बूढपणा मे रामजी थारो ही नुगतो राख्यो ॥१॥

मूँडो उतारे ई शूँ कई व्हे' है । नी वी परमारथ री कानी रे' ने नी वी व्यवहार रो कानी । सिवाय दूजा रा विवेचन रे खुद करवा ने त्यार हीं नी व्हे' है । अणी तरे' शूँ जी परमारथ री कानी चाले, वणाँ ने भगवान सूत्रकार आज्ञा करे, के सब शू नजी'क है । सिरफ आँणो पडतलपणो छोड दो । अणी सिवाय और कई नजी'क व्हे' शके है । नजी'क के'णो भी छेटी है, पण सनरा आपणी बुद्धि माफिक ही चालेगा । जो आँपणाँ स्वभाव पे अधिकार व्हे' तो कई वात छेटी है । यूँ विश्वास पक्षपात शूँ ही ई री दृष्टा री प्राप्ति रा छेटी, नजी'क, ने सब शूँ नजी'क, यूँ नराई भेद व्हे' शके है, ने वणाँ भेदाँ रा ही कीड़ी रो गेलो, मच्छी रा गेलो, पखेरू रो गेलो आदि मार्ग भेद महात्मा किया है । ज्यूँ "घणो छेटी नजी'क भी" यो समाधि पाद व्हेवा शूँ अणी में ऊँची वात (विहंग मार्ग) हीज की' है । अरया रे वास्ते ही महाराज तुलसीदास जी आज्ञा करे के—

उ० हे सौम्य ! श्रद्धादि तीव्र होने से जल्दी ही योग मिल जाता है । परन्तु उस तीव्र के भी तीन भेद हैं–मृदु, मध्य, और अधिमात्र । इन में तीव्र अधिमात्र वेगवाले योगी को योग की प्राप्ति में कुछ भी विलम्ब नहीं लगता ।

"एक पहर में मुक्ति बतावे, सो सतगुरु मेरे मन भावै।"

ने दयानिधान (ठा० गुमानसिंहजी लछमणपुरा-मेवाड़) भी आज्ञा करे के—

जो तूँ अचल रहाय मिटन दस बीस गुमाना।
तेरो मन यों मिटे मिटे ज्यों बद्दल साना॥"

४—ई श्रद्धादिक तेज (वेग) शूँ व्हे', वणी तेज रा भी तीन भेद है-मृदुतीव्र, मध्यवर्ती, अधिमात्र तीव्र। ई एक एक शूँ वधता है। तेज तीव्र वेग शूँ योगाभ्यास करे, पण वणी में मृदुता व्हे' तो वो थोडा दिन में पाछो ढीलो पड़जाय, पण अधिमात्र तीव्र व्हे' वणी में भोल (देर) नी पडे, ने से'ल ही में परम वैराग्य व्हे', ने परमपद पाय ले। नीतर भवप्रत्यय री कानीं ढळ जाय अर्थात धर्म ने (योगांगने) श्रद्धा, तीव्र अधिमात्र शूँ व्हे' तो घणो भट मुकाम पे आय जाय। अणी में श्रद्धा ही मुख्य है। श्रद्धा व्हे' तो पछे सब ही व्हे' जाय। श्रद्धा भी सात्विकी व्हे' ने वा भी अधिमात्र तीव्र (दृढ) व्हे' तो पछे पावगो कीं ने ? पायो पूयो है। संवेग अभ्यास, वैराग्य ने उपाय, श्रद्धादि ने भी नराई गणे है। गीता अ-६ श्लोक-३६ अणी रो सूचक है।

सू०—ईश्वरप्रणिधानाद्वा ॥२३॥

१—ईश्वर भक्ति शूँ भी।

२—परमेश्वर रो आशरो लेवा शूँ भी भट ही महा सुख मिल जाय है। (ईं ने ईश्वर प्रणिधान भी के' है।)

---

(५) प्र०—सब से शीघ्र समाधि प्राप्ति का और भी कोई उपाय है,

३—ईश्वर में मन लगावा शूँ भी घणो झट असम्प्रज्ञात समाधि प्राप्त व्हे'जाय है। ईश्वर समर्थ ने के'हे, ने एक शूँ एक वडो ने समथ है। पण जठे समर्थपणा री अवधि है, जीं शूँ वडो तो कई पण जणो जश्या भी और नी व्हे',वो ईश्वर—

 नी आप सो और वडो कठे तो
हे वापड़ा सर्व वडा अठे तो (गीताजी)

सब ही समर्थ है। पाणी में भी वीज ने ऊगवा री सामर्थ्य है, वडलारा वीज में वडला रो म्होटो रूँख वणवा री सामर्थ्य है। पण यू ही सामर्थ्या सबाँ में आई कठा शूँ, ने आँपाँ जाणाँ, आँपाँ मे या सामर्थ्य है, राजा जाणे म्हारा मे या सामर्थ्य है, पण देखाँ हाँ, के घी सामर्थ्या थिर नी है-पूरी नी है। जदी यो विचार मनख करे, के म्हारा मे बोलवा री, विचारवा री सामर्थ्य है, सो कणी आधार पे ठे'र री है, कठा शूँ आई, ने कठे जायगा, ने ईं रो खजानो कश्यो है, तो वो आँपणाँ जोर ने ईश्वर में समझ लेगा। फेर आँपणाँ नाम शूँ कई भी पे'ली ज्यू वाकी नी रे'गा, पण ज्यो रे'गा वो ईश्वर प्रणिधान के' है। ज्यूँ—

"विजन ज्यूँ यो विश्व है, सुर ज्यूँ ईश्वर जाण।
वणी विना यो नी रहे, इण विन वठे न हाण॥"

अणी ईश्वर प्रणिधान री ही गीताजी में भी मुख्यता है-

"वीरे ही शरणे जाव, सदा ही सब भाव शूँ।
वीं री कृपा शूँ पावेगा, स्थान शान्ति अखूट रो॥
रह्यो फेर सबाँ रे ही, हिया मे बैठ ईश्वर।"

यी नहीं ?

उ०—परमयोग ईश्वरप्रणिधान (भक्ति) से भी शीघ्र प्राप्त होजाता है।

इत्यादि संपूर्ण गीताजी में या हीज वात है—

"म्हनें पूज म्हने चित, म्हने ही भक्ति शूँ नमं।
म्हने ही पायगा प्यारा, म्हाँ मे ही लहलोट व्हे'।"

भट प्राप्ति रे वास्ते गीता जी में—

भट वो होय धर्मात्मा, अखूट सुख पायले'।
नी म्हारा भक्त रो नाश, प्रतिज्ञा कर म्हूं कहूं॥

४—उपाय ने संवेग दोई तीव्र ने अधिमात्र अर्थात् तीव्र संवग शू अधिमात्र उपाय व्हे' तो पछे वात करताँ देर लागे, पण प्राप्ति में देर नी लागे। वणी में अभ्यास वैराग्य मुख्य उपाय है। वणी में अष्टांग योग अंतर्गत है। श्रद्धादि संवेग भी एक तरे' रो उपाय हीज समझणो चावे। अणाँ सबाँ वचे ही ईश्वर प्रणिधान (भक्ति) करवाशूँ सब शूँ भट ही परमात्मा रो साक्षात् परमयोग मिल जाय है, यो सर्वोपरि उपाय है। अणी में विना ही मे'नत केवल याद, जाण लेणो हो पाय जाणो है। क्यूँके ईश्वर रे मूँडा आगे आया, ने आँपणो जोर मर्यो। ज्यूँ सूरज रे आगे आग्यो या दीवो, ने वणी रे आगे नी तो और जगा कठे है? जदी'ज-केवे,के 'सुमरण साधन तो विषयां रो करणो पड़े, जो आँपाँणो जीवन है। वणी रो सुमरण करणो, अशो मूरखता फेर कई व्हे'। म्हूँ तो ई ने आछो गणूँ, के जणी रे सुमरण करणो मिट जाय, ने यो ईश्वर-प्रणिधान हीज है। जणीरा वणी में डेरा जम्या है, वणी रा कूण उखेल शके। शिवस्तोत्रावली देखणी चावे।

सू०—क्लेशकर्म विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुष-विशेषः ईश्वरः ॥२४॥

१—क्लेश, कर्म-विपाक, ने आशय शूँ न्यारो, जीव शूँ विशेष ईश्वर है।

२—दु ख, दु खरा कर्म, दु खरा फळ, ने दु खरा विचार, याँ शूँ न्यारो, ने जीव शूँ वत्तो परमेश्वर है।

३—ईश्वर में, ने जीव में अर्थात् आँपाँ में, ने ईश्वर में कई फरक है? अणी पे के' है, के बेसमझी, ने वीं शूँ कर्म, ने वीं शूँ वीरा फळ, ने वणी शूँ वणाँ रीं याद, अणाँ में उळझतो रे' सो जीव, ने अणां में नी उळझे वो जीव शूँ विशेष है, ने वो ही ईश्वर वाजे है। अणी पे उपनिषद् मे एक दृष्टान्त दीधो है, के एक ही पीपळी पे एक ही सरीखा दो पखेरू है। वणाँ में कई फरक नी है। सब वाताँ मे एक सरीखा है, प ग सब वाताँ एक सरीखी व्हेवा पे भी वणाँ में यो भेद है, के एक तो पीपळा खाय रियो है, ने एक देखरियो है-पण खाय नी रियो है। जदी अणी खावावाळे देखवावाळा री आडी देख्यो, ने अणी रो भी खाणो छूट जाय, ने खाणो छूट्याँ केडे, तो फेर दोयाँ में और कई फरक नी रे'। क्यूंके फरक तो यो एक हीज हो, जो वणी रे देखवा शूँ अणी रो खाणो छूटणो है, ने खबर पडणो भी वणी रे देखवा शू है—

(५) प्र०—हे भगवन्! ईश्वर के स्वरूप को मुझे समझाइये कि ईश्वर किसे कहना चाहिये?

म०—जिसे क्लेश (वासना), कर्म-कर्मफल और कर्मों के संस्कार

"म्हने कर्म नहीं लेपे, नी चाऊँ कर्म रो फळ ।
यूं म्हने जाण लेवे सो, बँधे वो कर्म शूं नहीं ॥"
श्री गीताजी

४—हरेक बात ने वाकब व्हेवा रे वास्ते आँपाँ जाणाँ, ने आशे आवे, ने आँपाणी भूमिका व्हे'वठा शूँ हीज शुरु करणी चावे । पुरुष (आँपाँ) पाँच ही क्लेश, आछा-बुरा कर्म, वाँरा फळ, ने पाछा वणाँ रा संस्काराँ शूँ उळझता जावाँ हाँ । यद्यपि आँपाँ जाणाँ हां, के ई आंपाँ नी हां, आंपाँ अणाँ शूँ न्यारा, ने अणाँ ने जाणवावाळा हां, तो भी अणाँ रो भोग आंपां सिवाय ई तो खुद कर ही नी शके, अबे आँपाँ भोगवावाळा जणी शूँ साबित व्हे'रिया हाँ, वो भी आँपाँ पुरुषाँ शूँ विशेष व्हियो, ने या हीज वणी री बड़ाई-ईश्वरपणो है, के ई भोग वणी में कदी भी नी आय शके, अश्यो ईश्वर आँपणाँ हीज ज्ञान शूँ सब रो प्रकाशक है । जीव मुक्त व्हे'जाय, तो भी जीव ही है, ने अबे बध में आवेगा, वो भी जीव ही है । चावे जणी दशा मे व्हे'जीव, जीव हीज है । जीव नी व्हे' तो ईश्वर नी । अठे गीता अ० ६ श्लोक ४७ मां रो ईश्वरप्रणिधान में अनुसधान (मिलान) करणो एकार्थ है । आखी गीता में यो ही प्रणिधान है ।

कभी स्पर्श नहीं कर सकते, वही (पुरुषोत्तम) जीवों से विशेष ईश्वर है ।

सू०—तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम् ॥२५॥

१—वणी में अनन्त ज्ञान रो बीज है।

२—सारी समझ रो मूळ वणी में हीज है।

३—'ईश्वर मे अपार ज्ञान है' ई शूँ यो मतलब नी'के नरी तरे'रो ज्ञान है। पण ईं रो यो भाव है, के जतरा ज्ञान है, वणी में शूँ, या वणी रा आधार पे है, अज्ञान जणी ने के'है, वो भी ज्ञान रा आधार पे है, ने ज्ञान भी वणी रा ज्ञान रा आधार पे है। ज्यूँ-**"है भूलणो याद विचार म्हाँ शूँ"** अर्थात् यो जो ज्ञान वाजे है, सो ईश्वर रा ज्ञान रे आगे, तो अज्ञान ही है, वो तो ज्ञानघन है।

जाणूं म्हूँ व्हे'गया ज्यां ने, जाणूं म्हूँ होयगा सबी।
जाणूं म्हूं होरया सो भी, नी जाणे कोइ भी म्हने ॥१॥

श्री गीताजी

एक ही रथ में विराजमान नजीक'ही अकर्ता ईश्वर फशी साक्षात् वातां कर रिया है। जतरे वणी ईश्वर ने नी पिछाणया वतरे ही वो सवाल जवाब करतो रियो, जाण्या केड़े, तो वो ही जाणे रथ रो एक अंग व्हे'गयो।

४—वणी ईश्वर में, ने आपाँणे (पुरुष) में सर्वज्ञपणो तो एक ही है। अणी'ज एकता शूँ आँपाँ ने ईश्वर प्राप्ति व्हे'है, वा

(५) प्र०—हे प्रभो! ऐसा ईश्वर कहाँ है दिखने में तो नहीं आता?

उ०—हे सौम्य! तेरे में जो इन वस्तुओं को जानने की ज्ञान शक्ति है, वह उसी ईश्वर से है, और उसमें यह अनन्त ज्ञान है, जानने वाले को कैसे जानेगा।

व्हे'री' है। ज्यूँ-अध्यातम नेत्र शूँ अधिदेव (सूर्य प्रकाश) रो प्राप्ति व्हे', पण अणी वणी में अतरो ही भेद है, के वणी में सर्वज्ञता री सीमा नी है-अनंत है, ने अणी में वणी सर्वज्ञता री सीमा है, ने जतरी सीमा है, वतरी ही अल्पता है। अणी'ज शूँ क्लेशादि रो उपचार (नाम) अणी जीव रे साथे लागे है। जी जीव ईश्वर ने एक माने, वणाँ रो वी स्वयं नाश करने शून्य मे परा जाय। शुद्ध भी अशुद्ध व्हे' जदी पाछो शुद्ध व्हियो अशुद्ध व्हे'जायगा। अणी वास्ते एक नित्य शुद्ध बुद्ध, एक शुद्धाशुद्ध, एक अशुद्ध यूँ ही सब ही है। अबे यो शुद्धाशुद्ध, जश्यो आशरो ले' वश्यो ही व्हे'। जणी शूँ ईश्वर प्रणिधान नित्य शुद्ध रो आशरो ले' तो नित्य शुद्ध व्हे'हीज। अणी'ज वास्ते वणी री पुनरावृत्ति नी व्हे', ने झट ही प्राप्त व्हे'जाय, दूज्यूँ मुशक्ल नरी पड़े है। गीताजी रा १२ मां अध्याय में प्रश्नोत्तर शूँ ही या की'है।

सू०-स एष पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्॥२६॥

१—वो यो वड़ायां रो भी गुरु है—अनादि, ने अनंत व्हेवा शूँ।

२—वो यो परमेश्वर हीज सबाँ ने सदा ही समझ देवा-वाळो गुरु है।

---

(५) प्र०—ईश्वर में ज्ञान कहाँ से आया? हमारे में ज्ञान शक्ति हमारे माता पिता से आती है यों मानने में क्या दोष है?

३—अगी में या हीज वात समझाई है, के गुरु शूँ एक में ज्ञान उतररियो है। पग अगी'ज रो ज्ञान पे'ली रो ज्ञान है, ज्यू ऊनां पणो सूरज में शूँ ठामड़े (वरतन) लीधो सो ठामड़ो भी ऊनो व्हे'गयो। ठामड़ा में शूँ पाणी लीधो, ने पाणी शूँ हाथ ने ऊनो जणाणो, पण वो ऊनो सूरज री हीज है, ने अणी में शूँ ही जणावे। ज्यूँ—

> "इन्द्रियां ने परे जाण, इन्द्रियां शूँ परे मन।
> मन शूँ पर बुद्धी ने, बुद्धि शूँ पर सो वही॥
> चार ही मनु पे'ली रा, सात ही जी महा ऋषी।
> ई म्हारा मन रा भाव, यांरा सारा चराचर॥
> म्हारी उत्पत्ति नी जाणे, देवता ने महा ऋषी।
> म्हूं ऋषीश्वर देवां रो, सबां रो आदि कारण॥"

अनादि अनन्त है अर्थात् समय शूँ ईश्वर नी वणे, पण ईश्वर, शूँ समय वणे है। पे'ली जो ज्ञान आयो सो अणी'ज परमात्मा शूँ आयो। अबार जो आय रियो है सो भी, ने अबे आवेगा सो भी एक अणी'ज शूँ है। पे'ली, पछे, अबार, ई वगत रा भेद है, ने ई भी एक सतत दृष्टा अविनाशी एक रस शूँ ही सावित व्हे' है। जी शूँ सबां रो गुरु यो ही एक है। आंपाँ ने ज्ञान सिखावे वो, ने आंपाँ में ज्ञान सीखे वो, दोई एक अणी'ज शूँ है।

उ०—हे सौम्य! तेरे माता पिता में और उनके भी माता पिता में यों सब में - इसी परमेश्वर की दी हुई ज्ञानशक्ति है। क्योंकि तेरे में और तेरे माता पिता आदि गुरु जनों में समय का ही भेद है। परन्तु वह समय के भेद से अलग केवल ज्ञान स्वरूप है। क्योंकि—

जी शूँ मूळ में (अपि) शब्द भी है अर्थात् सब अणी'ज शूँ सावित व्हे" है। अणी शूँ ही चलाया चाल रिया है। यो ही गुरु है। 'वो, यो', के'वा .रो मतलब है, के वो जो पे'ळी रा रो भी गुरु हो, वो यो है, अर्थात् आंपाँ मे है या 'आंपाँ जणी में, आंपाणो आपो जी में हैं, सो वो ही है,। क्यूँके वगत चावे सो ही 'व्हो' अणीं में नाम फरक नी है (तत्, त्वं, असि)।

४—वो सर्वज्ञ है, क्यूँ के विषयाँ शूँ लगाय जीव तक जो जाणणो असली है, वो वणी शूँ हीज है।

"विषय करन सुरजीव समेता, सकल एक तें एक सचेता।
सब कर परम प्रकाशक जोई, राम अनादि अवधपति सोई॥"

ई कुल ही प्रकृति रा हेर फेर है। अणां ने कालकृत को' या हेरफेर शूँ को'— काळ,ने हेर फेर एक, ही है। पण ई वातां (काळ) वणी री छाया ने भी नी आवड़ (छूई) शके, वो यो जाणवावाळो सवां रो पे'ली शूँ पे'ली रा में भी ज्ञान देवावाळो है। जो अवार आँपाँ में, ने आँपाँ आदि में प्रत्यक्ष ज्ञान दे' रियो है। वो अतरो ऊँचो व्हे'ने भी अतरो हरे'क रे नखे भी है। जी शूँ "स एप अपि" के', ने हेतु काल शूँ अस्पृश्य अणी ने साक्षात्कार कराय दीधो है। अणी सिवाय और शब्द री सामर्थ्य ही कई व्हे'शके।

इन्द्रियाणि पराण्याहु रिंद्रियेभ्यःपरं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धि र्यो बुद्धे पर तस्तु सः ॥१॥
(इन्द्रियां पर है। इन्द्रियों से पर मन है। मन से पर बुद्धि है। बुद्धि से पर जो है, वही ईश्वर है)

सू०—तस्यवाचकः प्रणवः ॥२७॥

१—वणी रो ॐ कार नाम है।

२—ॐ कार वणी रो नाम है।

३—अरया ईश्वर रो नाम याद करावावाळो ॐ है। क्यूंके थोड़ो शूँ थोड़ो, ने अधिक शूँ अधिक, पकड विना नाम नी लेणी आवे। ज्यू-छेटी हेलो पाडणो (बुलावणो) वत्ती पकड़ है, तो मन में विचार करणो ओछी पकड है। मई पकड़ शूँ ही वत्ती पकड वणे है। ज्यु-विना विचार कीधाँ बोलणों नी आवे, पे'लो मही विचार व्हेवे, पछे वी हीज कठ में पकडाय, ने प्रकट व्हे', वणी ने बोलवो के'है। बोलवा में भी दो भेद कीधा है—एक तो राग रो, ज्यू कोई लै' लेरे, ने एक वातोंचीतों करे सो। परन्तु राग रो बोलवो ने वातों रो बोलवो दोयाँ मे ही एक तरे'री धुन (ध्वनि) व्हियाँ करे। वणी रा ही ई सब भेद है। या बारीक शूँ बारीक धुन हीज ईश्वर रो नाम है, ने वाहीज सब अक्षर राग विचार में मिली थकी है। वणी ने ही ॐ कार के'है। ज्यू—

> एक अक्षर ॐ ब्रह्म, कहतो चिंततो व्हेने।
> जो देह तजने जावे, पावे वो परमा गति ॥१॥
>
> श्री गीताजी

अणी'ज शूँ अणी ने अक्षर ब्रह्म के'है। क्यूँके वणी धुन रो कठे ही नाश नी है-एक समान सर्व व्यापक है। अणी'ज रा

(५) प्र०—ईश्वर के स्वरूप को सुनते ही मुझे बहुत शान्ति हुई, अब कृपा कर प्रणिधान किसे कहते हैं, सो भी आज्ञा कीजिये?

वैखरी-मध्यमा प्रश्यती परा और परात्परा नाम के' है। चावे जी शूँ जणी री वो नाम व्हे' वो ओळखाय जाय। नाम ने नाम वाळो साथे ही याद आय जाय। ई शूँ ॐ ही ईश्वर रो असो नाम है। (ज्यूँ-व्यंजन में स्वर व्यापक है, यू ही स्वर में प्रणव व्यापक है) ज्यू—

> त्रिलोकी।वृत्त्या ने त्रण सुर तथा वेद त्रण ने
> कहे तीना ने यू अ.उ म. अखराँ शूँ प्रणव ही।
> अगाँ शूँ न्यारा ने विमल धुन चोथोपद कहे
> थने भेळो न्यारो सहज शिव ॐकार वरणे (महिम्न)

अठे या भी याद राखणी, के परमात्मा रा अनेक भाव रा अनेक नाम है। सबाँ में ही वणी री प्राप्ति है। ॐकार सबा शूँ न्यारो नी है। जश्यो ईश्वर है, वश्यो ही वणी रो नाम भी है, ने वश्यो ही वणी रो वर्णन भी है।

४—अने कई बाकी, रियो सहज बात सदा री समझ में आयगी, ही ज्यू ही जाणी। प्रणिधान (वणी में बेठणो, ने प्रणव (वणी में ढळ्ता जाणो) एक ही बात है। हरे'क बात रो सक्ेत नाम व्हे'तो वणी शूँ या याद आवती रे'वे। जदी अणी रो सक्ेत नाम कई है। पण नाम तो कोईक देवे जदी पडे। जगद्गुरु रो नाम कुण दे', वणी रो नाम वो हीज दे तो भलें ही दे' शके है। यो नाम सदा रो वीरो ॐ है। ॐ रो अर्थ सम्पूर्ण दीखे सो है। यो दीखे सो वणी रो हीज नाम है। यूँ विचार मात्र में वणी री

ट०—हे वत्स! ऐसे ईश्वर का सूचक (नाम) प्रणव है। इसी ॐकार से प्रणिधान किया जाता है।

यात व्हे'ती रे' है। यो ही प्रणव रो जप, ने वीं री भावना है। अणी सरीखो सरल उत्तम और उपाय ही नी व्हे'शके। यो ही मांडूक्य उपनिषद् में ठीक समझायो है, ने सर्वत्र सत्शास्त्र या ही बात कें'है। यू जतरा भगवत् भाव शूँ नाम है, सब ही प्रणव है, ने भावरहित भी वणी रा नाम तो प्रणव हीज है। अणी वास्ते ज्यू व्हे' ज्यूं वणी रो नाम, ने अर्थ विचारता रे'णो।

—०:००—

सू०—तज्जपस्तदर्थभावनम् ॥२८॥

१—वणी रो जप, ने वीं रा अर्थ री भावना।

२—अणी रो जप करणो, ने अणी रा अर्थ ने विचारणो।

३—वणी ईश्वर रा नाम रो जप वारंवार स्मरण करणो, ने वीं रा (ॐ कार रा) अर्थ री भावना करणी अर्थात् ऊपर लिख्यां माफिक भावना व्हे'णी ही ईश्वर प्रणिधान है। ईं रो रहस्य गुरु मुख शूँ मांडूक्य उपनिषद् समझवा पे मालुम पड़जाय, के यो वास्तव में एक घड़ी सरल, ने जल्दी परमात्मा (द्रष्टा) री प्राप्ति रो उपाय है। नाम विना कोई कीने पिछाण नी शके— नाम मय ही सब है। अणी वास्ते ईश्वर रो नाम व्हे', तो ईश्वर भी ओळखाय जाय, जी वेवे, के ईश्वर रो नाम नी है। वणाँ रो

(५) प्र०—प्रणव के द्वारा प्राणिधान कैसे किया जाता है?

उ०—प्रणव के जप के साथ प्रथम कहा उस के अनुसार ईश्वर की भावना होते रहना ही प्रणिधान (भक्ति) है।

यो मतलब है, के अतरा नामाँ ज्यूँ ईश्वर रो नाम नी है। दूज्यूँ तो सब ही ईश्वर रा ही नाम है। नाम री कानी वृत्ति रे'वा शूँ नाम वाळा ने प्राप्त करणी आय जाय है। वणी रा दो भेद है— एक तो वारंवार एकाकार नाम में हीज लागा रेणो। नाम ही ईश्वर है, नाम शूँ न्यारो ईश्वर नी है, असयो निश्चय। ने एक नाम शूँ ईश्वर री कानी वृत्ति ले'जाणी अर्थात् ईश्वर ने वर्णन शूँ पावणो। ई दोई उपाय उपरला सूत्र में बताय दीधा है, के वी रो जप, ने वणी रा अर्थ री भावना। वीं रो जप ही योग है, ने अर्थ री भावना ही सांख्य है, ने सांख्य योग एक ही है ज्यूँ—

"योगी ने भी मिले वा ही, ज्ञानी ने ज्या जगा' मिले।
एक ही योग ने सांख्य, दीखे दीखे वणी'ज ने॥"
श्री गीताजी

अणी भक्ति अर्थात ईश्वर मे प्रणिधान री भगवान सूत्रकार अतरा सूत्राँ मे अणी वास्ते ही समझायश।कीधी है, के यो एक शे'ल, ने उत्तम तथा सब रो सार है। सांख्य शूँ अठे ही अणी'ज वात में योग आगे निकळे है। सांख्य ईश्वर रो अणी वास्ते प्रतिपादन नी करे, के लोग मलिन बुद्धि शूँ वणी ने छेटी जाण—और जाण बारणे हेरवा लाग जायगा। योग-ईश्वर रो वर्णन अणी वास्ते करे, के लोग मलिन बुद्धि शूँ अन्य ईश्वर नी है, यूँ जाण मलिनता मे ही रुक रेगा। ईं रो सार यूँ है, के नी तो ईश्वर मलिन है, ने नी वो छेटी है—

(नोट) "ॐ मित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरमनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम्॥"

"ॐ तत् सत् यो कह्यो नाम, ब्रह्म रो तीन भाँति शूँ।
अणी'ज शूँ ब्रह्मज्ञानी, ॐकार कहने सदा ॥"
श्री गीताजी

४—यूँ वणी रा ॐ प्रणव नाम रा अर्थ री भावना ही प्रणव (नाम) रो जप है। पण यूँ भावना छूट जाय तो पाछो प्रणव रो (ॐकार रो) जप ज्यूँ व्हे' ज्यूँ ही करवा लाग जाणो। यो ही अणी रो उपाय है। अर्थ भावना ही समाधि है, ने ईं रो (प्रणव रो) जपणो ही साधन है। साधन में शूँ समाधि में, ने समाधि शूँ साधन में अणी सिवाय और कई धंधो ही नी है। अणी'ज पे कियो है, के (स्वाध्यायादि०) अणी शूँ ईश्वर प्रणिधान व्हे' ने, भगवान् प्रसन्न व्हे', ने सब विघ्न स्वतः ही मिटाय झट ही अपणाय लेवे।

सू०—ततः प्रत्यक् चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च ॥२६॥

१—ईं शूँ आत्मलाभ व्हे' और विघ्न भी मिटे है।
२—ईं शूँ नजीक ही महासुख मिले, ने अटकाँ भी मिट जाय।

३—ऊपरला सूत्राँ में कियो, जणी माफिक ईश्वर में मन लागवा शूँ एक तो योग रा सब विघ्न मिट जाय और यो लाभ व्हे', के आपणो ज्ञान आपाँ ने व्हे' जाय। या बात सब योग रा साधन शूँ व्हेवे हीज है। परन्तु पे'ली पे'ली साधन करवावाळा

प्र०—और उपायों (अभ्यासों) की अपेक्षा ईश्वर प्रणिधान (भक्ति) में क्या विशेषता है?

ने घणी अवकाई पड़े है; पण अणी तरे' शूँ ईश्वर में मन लागवा शूँ ठेट शूँ ही वी अवकायाँ टळजाय है, ने आपणो सही सही ओळखाण व्हे'जाय है। नशा में आपणो सही सही ज्ञान नीं रे'वो शूँ मनरा कतरी ही उलटी वार्ताँ करे है। ईं शूँ आपणो सही ज्ञान पूरो जरूरी साबत व्हे'शके है, ने विघ्न आय जावा शूँ मनरा घणी ही रुक रे'है, सो दोई वार्ताँ अणी एक ही उपाय शूँ प्रारंभ शूँ ही मिटवा लागे है। क्यूके अणी में आपो भी रे', ने नी भी रे'। आपो रे'ने भी ईश्वर की सत्ता में अश्यो रंगाय जाय, के न्यारो वणवा रो मन नी चाले।

"शूँतो आरभ नी ईं रो, अणी मे विघ्न भी नहीं।
थोड़ो ही यो सध्यो धर्म, भारी भय मिटाय दे॥"

श्री गीताजी

प्रत्यक् चेतन शूँ आपणो ज्ञान कियो है सो ईश्वर मे प्रणिधान व्हेवा शूँ स्पष्ट व्हे'जाय है। दूज्यू आप कणी-ने-कणी बारीक वृत्ति रो पड़दो राख ही ले', अर्थात् सतोगुण मिश्रित ही आप (अह) रे'जाय। पण निखाळस रो तो यो ही उपाय है। जी शूँ ही यो सेश्वर सांख्य ही उत्तम है। सांख्य शूँ योग में या हीज अधिकता है।

४—यूँ ईश्वरप्रणिधान (भक्ति) सब ही उपायाँ शूँ सब ही वार्ताँ में वत्तो क्यूँ है? ईं रो कारण यो है, के अणी शूँ सहज में प्रत्यक्चेतनअंतरात्मा मे ठे'राय जवाय है। अणी विना पत्यक्आत्मा

उ०—इस से भीतरी (भीतर में रहने वाले) चैतन्य का स्पष्ट ज्ञान होता है और योग के अन्तराय (विघ्न) भी मिट जाते हैं (अन्य साधनों की अपेक्षा इस मे यही विशेषता है)।

वारला मे हीज रे'वाय जाय है। वारला मे शूँ असली अतर रा (माँयला) मे आयणो घणो कठिन पडे है। अणा ज अन्क मे जमारा वीत जाय, । यों ही वृत्ति सारूप्य, ने स्वरूपावस्थान पे'ला कियोहो सो ही ई शूँ सहज मे मिल जाय। अणी सिवाय योग रा विन्न भी अणी'ज भक्ति शूँ साथे ही आपो आप मिटता जाय है। परतु या (भक्ति) और कणी मे ही यूँ नी व्हे'। पछे ई ने यूँ निश्चय व्हे'जाय के म्हारा में ही ई क्लेश आदि नी आय शके, ने ई तो अविद्या रा कीधा थका है। जदी म्हारी भी आत्मा प्रभु मे तो अणा री छाया भी नी पूगे यूँ अणी ने साफ दीखे।

सू०—व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरति-भ्रांतिदर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थित-त्वानि चित्तविक्षेपास्तेनान्तरायाः ॥३०॥

१—व्याधि, स्त्यान, सशय, प्रमाद, आलस्य, अवरति, भ्रान्ति दर्शन, अलब्धभूमिकत्व, अनवस्थितत्व, ई नौ चित्त ने ठे'रवा नी दे। जीं शूँ ई योगरा विन्न वाजे है।

२—रोग, ढील, भे'म नेरप, आळस, उळम, उलटी समभ,

(५) प्र० हे प्रभो! आपने जो आज्ञा की कि ईश्वरप्रणिधान से योग के विघ्न मिट जाते है, वे योग के विघ्न क्या क्या है सो कृपा कर आज्ञा कीजिये।

ऊँचा नीं वधणो, ने ढळकजाणो ई मन री तरगा होज अटकां है (यांनि अन्तराय भी के' है)।

३— सूत्रकार जो प्रणिधान सब शूँ शीघ्र वृत्तिनिरोध (समाधि) रो उपाय है या वात अणी सूत्र शूँ वतावे है, के अणां मायलो एक विघ्न भी आरा ही जन्म में भी योग नी व्हेवा दे'। ई कुल ही ईश्वर भक्ति शूँ मिले है। अणी वास्ते ईश्वर भक्ति ही उत्तम योग है। वणा विघ्नां रा नाम ई है। (१) व्याधि, शरीर (रो रोग) (२) स्त्यान, (मन चाले के योग करां पण करणी नी आवे, ने कारण देखे तो कई नी) (३) संशय, (योग में कई उड़े, फेर यूँ भी व्हे' के संसार में कई उड़े, घडी'क यो ठीक दीखे, घडी'क वो ठीक दीखे) (४) प्रमाद, (फर ही लीधो, ने फर ही रियाँ हाँ, ने करताँ कई देर लागे, ओ, असयो कई है, यूँ ठहरणो) (५) आलस्य, (काल परसूँ काल परसूँ करता रे'णो। यूँ व्हे'नै करूँ, यूं व्हे'ने करूं) (६) अविरति, (ससार री कानी मन री खेंच रे'णो। अवैराग संसार री वातां में मन रो वढ़तो रे'णो) (७) भ्रान्तिदर्शन, (अयोग ने योग मान वैठणो) (८) अलब्धभूमिकत्व, (दूसरा पद रा २७ वाँ, सूत्रमें की' धकी भूमिका रो यथाक्रम नी पावणो) (९) अनवस्थितत्व, (पाय ने भी नी ठे'रणो, पाछा उतर आवणो) ई नौ चित्त ने योग रे विमुख करवा वाळा है। अणा रो नाम है, योग विघ्न वा अंतराय। ई कुल भक्ति शूँ मिटे—

"नी म्हारा भक्त रो नाश प्रतिज्ञा कर म्हूँ कहूँ।" श्री गीताजी

उ० व्याधि (रोग), स्त्यान (योग करने की इच्छा तो होना पर करना नहीं), संशय (संदेह), प्रमाद (साधन में

४—ई नौ विघ्न है, ने एक शूँ एक मिल्या थका है। ई बिलकुल मिट जाणा चावे। अणाँ रे मिट्याँ विना योग में अन्तराय रे' जाय। पण ई मिटे भी योग शूँ ही है, ने योग ने ई आवा भी नी देवे, पण ईश्वरभक्ति आपणाँ में व्हे'ने अणाँ ने मिटाय भी दे' या वत्ताई है व्याधि, = रोग। स्त्यान = ठालापणो। संशय = भे'म। प्रमाद = बोफाई। आलस्य = आळस। अविरति = उळझावट। भ्रान्तिदर्शन = ऊँधी समझ। अलब्धभूमिकत्व = आगे नी चलाय शके। अनवस्थितत्व = ठे'रणी नी आवे। ई चित्त रा विक्षेप साथे व्हे तो विघ्न है, दूज्यूँ तो कई आडा नी आवे।

बेपरवाही), आलस्य, अविरति (विषयों में आसक्ति) भ्रान्तिदर्शन (गलत समझ), अलब्धभूमिकत्व (योग के किसी भी अनुभव को नहीं पाना अथवा इस पार ही रुक जाना), अनवस्थितत्व (योग के अनुभव को पाकर भी पीछे नीचे सरक जाना योगानुभव में स्थिर नहीं रहना), यही योग के नौ विघ्न हैं। ये ही योग से चित्त हटाने वाले हैं।

नोट—ये चित्त वृत्ति के चचल होने से होते हैं।

सू०—दुखदौर्मनस्याऽङ्गमेजयत्वश्वासप्रश्वासा-विक्षेप सहभुवः ॥३१॥

१—दुःख, मन री उदासी वार वार आसन री उलटा पलटी, श्वास रो ज्यादा आवणो जाणो, ई चार वातां भी उपर लिख्या विघ्नां रे साथे हीज रे'है।

२—दु.ख, उदासी, शरीर री चचळता, ने श्वास ई अणाँ अटकाँ रे साथे हीज व्हे'है।

३—याँ नौ विघ्नाँ मायलो, चावे जश्यो ही योग रो विघ्न व्हो' वो मन ने चचल कर देगा, ने मन उश्यो के उपरलो चार ही वाताँ दिखवा लाग जायगा। ई रो यो मतलब है, के अणां चार वाताँ शूँ खवर पड़ जाय, के कोई-न-कोई योग री अटक (विघ्न) है। क्यूँ के नौ विघ्न वारीक व्हेवा शूँ खवर नी पडे, तो अणाँ चार शूँ स्पष्ट खवर पड़ जाय, के कई- न-नई फेर पड्यो। ज्यो ठीक ठीक साधन व्हे'तो तो ई क्यूँ व्हे'ता। ज्यूँ वाळक ने रोवतो देखवा शूँ वणी रा दुःख रो अठोटो वधे, यूँ ही अणाँ चार स्थूल वाताँ शूँ विक्षेप रो अर्थात् योग रा विघ्नाँ रो अदाज लाग जाय है। कोई के'वे के ई नौ विघ्न तो म्हाँणे नी है, जदी फेर दु.खादि क्यूँ व्हे' ने अणाँ (दुःखादि) ने कूँकर मिटावणा। क्यूँ-के दुःखादि रो अनुभव तो सबां ने झट ही व्हे' जाय है। ज्यूँ

---

(५) प्र० इन विघ्नों की क्या पहचान है ? अर्थात् हमें कैसे मालूम होवे कि हमारे चित्त में विक्षेप (विघ्न) है ?

अवकाई आवणी, उदासी आवणी, एकजगा नी ठे'रणी आवणी, घड़ी घड़ी उठणो बेठणो, निशाश न्हाकणो आदि। जणी पे के'वे, के ई नौ विघ्न पे'ली वताया जणाँ रे साथे ही व्हेवा वाळा है। जदी या वात कई के ई मिटे कूँकर ? अणी पे कि'यो, के ईश्वर-भक्ति शूँ मिटे है। ई पे सवाल व्हे' के ईश्वरभक्ति कूँकर व्हे' ? ई पे आगला सूत्राँ शूँ वणी रे व्हेवा री तर्जा, दर्जा, ने हालताँ वताय ने परम सिद्धान्त अर्थात् भक्ति री अवधि वताय समाधि पद्र समाप्त करेगा। क्यूँ के—अणी उत्तम वात रो विस्तारपूर्वक समभावणो आवश्यक है। क्यूँके योग रो रहस्य ही यो हीज है।

४—दुःख, उदासी, शरीर रो स्थिर नी रे'णो, श्वास वधणो, ई उपरला नौ ही विघ्नाँ रे साथे साथे बधे है, ने जतरा विघ्न ओछा व्हे'ता जाय वतरा ही ई भी कमती व्हे'ता जाय है। था विघ्नाँ री ओळख है। ज्यूँ ताव रे साथे वणी रा उपद्रवां री हालत शूँ मायला विकार री खबर पड़े, वास्तव में रोग वधे ही उपद्रवाँ में दुःख वत्तो जणाय, ने रोग मिटे जदी तो उपद्रव भी मिटे हीज, पण पे'ली भी लेप आदि शूँ उपद्रवाँ री न्यारी शांति करे तो रोगी ने चैन मिल ने मूळ रोग मिटवा री हाँश ने उत्साह वधे, अणी वास्ते मन एक कानी लाग शके है। क्यूँ के एक जगा' ठे'रणो, ने भटकणो ई दोई गुण अणी में है, जणी ने वधावे वो ही अभ्यास शूँ वध शके है।

उ० – दुःख (तीनोंताप) दौर्मनस्य (इच्छा घात से मन की भीतरी उदासी) अङ्गमेजयत्व (आसन की स्थिरता) ,श्वास प्रश्वास (श्वास का आना जाना) ये योग विघ्नों के साथी हैं अर्थात् उपर्युक्त दुःखादिक योग के अन्तराय (विघ्नों) के सूचक हैं। जैसे ज्वर के सूचक अरुचि शिरोवेदना और शरीर का गरम होना है।

सू०—तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्वाभ्यासः ॥३२॥

१—श्रणां ने मिटावा रो उपाय एक तत्व रो अभ्यास है।

२—श्रणां ने मिटावा वास्ते मन ने एक कानी लगायो राख-वारो मा'वरो करणो चावे, ईं ने एक तत्वाभ्यास भी के'है।

३—अठे कतराक री राय है, के एक तत्व, चावे ज्योही एक अभ्यास करवाने के'है, परन्तु या वात नी है। एक तत्व शूँ अठे ईश्वर में तदाकारवृत्ति व्हे'जावा रो मतलब है, ने चावे ज्योही एक अभ्यास करवा री आगे ३९ वां सूत्र में आवेगा। भाव यो, के ईश्वर में तदाकारवृत्ति व्हेवा शूँ नौ ही (३० वां सूत्र रा) योग रा विघ्न, नैं वणाँ रे साथे व्हेवा वाळ। (३१ वां सूत्र रा) चार ही योग रा उपद्रव मिटे है। ज्यूं ताव रे साथे डील टूटणो, माथो दूखणो, डील गरम व्हे'णो, आदि दीखे है, ने ई ताव रा उपद्रव वाजे है। यूं ही नौ, चित्त थिर नी रे'वा रा रोग है, ने वणाँ शूँ दुःखआदि चार ही वाँरा उपद्रव दीखे है। अणाँ ने मिटावा वास्ते एक परमात्मा दृष्टा रे आकार वृत्ति रो ही अभ्यास व्हे'णो चावे। क्यूं के तरे' तरे' रा अभ्यास वाळी वृत्ति डग जाय है। जदी'ज भगवान् हुकम कीधो है के—

> सघळा धर्म थूं छोड़, म्हारें ही शरणे रह।
> म्हूं थने सब पापां शूँ, छुड़ाऊँगा डरे मती॥
>
> श्री गीताजी

---

(५) प्र०—जैसे सिर दर्द के लिये ज्वरनाशक औषध के सिवाय लेपादि हैं वैसे ही इनके लिये ईश्वर प्रणिधान के सिवाय प्रथक् उपाय क्या है?

अठे यो सूत्र, भक्ति योग (शीघ्र प्राप्ति रा उपाय) री समाप्ति बतावाने है, ने या भी अणी सूत्र शूँ बताई के भक्ति, भक्ति रो उपाय, भक्तिवाळो, ने ईश्वर, याँरो न्यारा न्यारा रे'णो एक तत्त्व रो अभ्यास नी वाजे; पण ई सब एक सूत में आय जाणो ही एकतत्वाभ्यास है, ने अणी शूँ ही शीघ्र समाधि प्राप्त व्हेवे, ने सब विघ्न (उपद्रव) सहज मे ही नाश व्हे'जाय। पण एक कानी मन चचल व्हेवा शूँ ठे'र कूंकर जाय, अणी पे व्यास भगवान् आज्ञा करे, के, वारणे ज्यूँ मन चंचल दिखे, यू ही माँयने सदा स्थिर ही है अर्थात् मन रो ऊपरलो भाग चचल है, ने माँयलो परम थिर वो ही एक तत्वाभ्यास वाजे है। मन रा अस्थिर हिस्सा ने वृत्ति के'है। अणो पे नरो' रायाँ (सम्मतियां) है। अणी रो अर्थ यूं व्हे'के ईश्वरप्रणिधान नी व्हे', वीं ने एकतत्वाभ्यास अर्थात् ईश्वर प्रणिधान रो अभ्यास-करणो चावे। क्यूंके, एक, ने तत्व,ई ईश्वर में हीज वैठ शके है, ने अभ्यास रो आगला सूत्र में वर्णन है हीज। अनेकां मे एकतत्व रो मावरो आगे वर्णन व्हे'है। भाव यो, के **"विक्षेप सह भुवः"** (३१ सू०) रो दृष्टा में आय जाणो वा दृष्य में आय जाणो ही एकतत्वाभ्यास वाजे है। वीं रा अभ्यास रा प्रकार आगे है। कतराक के'के अणी रो मतलब यो है, के एक हीज अभ्यास करणो तरे'तरे'रा नी करणा। ज्यू आज यो ने काले वो, ने अभ्यास भी तत्व रो-सार रो चावे, शास्त्रानुसार चावे। कोई के'वे, के वो अभ्यास कई व्हे'है ? जणी पे न्यारा न्यारा नाम बताय ने के'वे के यूं मन व्हे' जो ही करो (पे'ला पाद रा ३९ वां सूत्र माफिक)।

उ०—हे वत्स ! इनको मिटाने के लिये एक ही तत्त्व (वस्तु) का अभ्यास करना चाहिये (स्थूलमलप्रक्षालन न्याय से)।

४—अणी वास्ते अणी दृढ दु:ख ने मिटावावास्ते अभ्यास ने वैराग्य री जरूरत है। यद्यपि असल में तो क्लेश मात्र ही विपर्यय है, पण अभ्यास, ने वैराग्य विना यो विपर्यय मिटे ने ई उपद्रव नी मिटे अभ्यास रा नरा ही उपाय किया है, पण सब ही साथे साथे नी सधे - **"एक ही साधे सब सधे, सब साधे सब जाय।"** अणी वास्ते एक ही उपाय रा श्रद्धादि पूर्वक दृढ अभ्यास करणो यो अणी रो भाव है। ई विना मन री चचलता (विक्षेप)नी मिटे, ने विक्षेपमिट्या विना विघ्न नी मिटे। अणी वास्ते ही एक बात री बडाई में दूसरी सब खडन कीधी जाय है। पण मूरख अणी मर्म ने विना जाण्या के' के वगा रे आगे ही विरोध हो, पण या तो आचार्यां री करुणा है।

सू०—मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुख-पुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्त प्रसादनम् ॥३३॥

१—मित्र ने सुखी देखवा शूँ मन राजी व्हे', यूं ही सब ने सुखी देख-मित्र री नाई समझणा। आपणाँ ने दुखी देख करुणा

(५) प्र० वह एक तत्व का अभ्यास क्या है सो कृपा कर आज्ञा कीजये ?

आवे, यू ही सब ने दुखी देख करुणा आवणी। पुण्यवाळा ने देख राजी व्हे'णो-पापी री चरचा ही नी करणी, अणी शूँ मन साफ निर्मल व्हे'जाय है।

२—सुखी पे मोह, दुखी पे दया, धर्मी पे हर्ष, ने पापी शूँ टळवारो विचार राखवा शूँ मन एक कानी लागे है। (ईं ने चित्त प्रसादन भी के' है)

३—अबे अठे या वात आई के अशी उत्तम भक्ति है, तो सनाँ ने ही करणी चावे, ने व्हे'नी शके, जदी कई वराँ? अणी पे सूत्रकार आज्ञा करे, के मन निर्मल व्हिया विना भक्ति रो अधिकार नी मिले, जीं शूँ मन निर्मल करवा रा उपाय अणी सूत्र शूँ प्रारभ कीधा है। ऊपरला सूत्र माफिक मन राखवा शूँ मन शुद्ध व्हे',ने भक्ति रे लायक व ग जाय है। विश्वास आदि २० वा सूत्र में किया थका उपाय तो सवाँ रे ही उपयोगी है हीज, पण वी विश्वास आदि न्यारा तो रे' ही नी शके। ज्यूँ अनुमान तो औपध रो हीज व्हे', यूँ ही २० वाँ सूत्र में किया थका श्रद्धा आदि जणी उपाय रे साथे लागे, वणी ने ही झट सिद्ध कर दे', ने वी भी अधिकार माफिक रा उपाय में होज लागे, जणी शूँ अतरा भेद साधनाँ रा व्हिया।

उ० हे भाई! सुखी में मित्र भावना करने से, दुखी में दया (करुणा) भावना करने से पुण्यात्मा में प्रसन्नता (खुशी) की भावना करने से अर्थात् पुण्यात्मा को जान कर प्रसन्न होने से और पापी से उपेक्षा (उदासीनता) करने से चित्त शुद्ध हो जाता है।

४—जो मन रो एक ही स्वभाव व्हे' तो पछे अभ्यास वैराग्य री कई भी जरूरत नी रे'। पण अभ्यास वेराग्य शू ही मन में तबदिली चावे जशी व्हे' शके है। एक ही अभ्यास, मन निर्मल किया विना नी व्हे' शके, अणी शू मन ने निर्मल करणो। रात-दिन रो व्यवहार शुद्धता पूर्वक करवा शूँ भी मन निर्मल व्हे' ने ठेरवा लाग जाय। वा शुद्धता यूँ व्हे' के सुखी शूँ मैत्री, दुखी पे करुणा, पुण्य पे मुदिता, पाप पे उपेक्षा, रीं भावना करता रे'णो। यूँ बा'रला व्यवहार में करताँ करताँ पाछा मन रे साथे अतर में भी करता रे'णो। यूँ मैत्र्यादि दोहो तरे' शूँ स्थूल सूक्ष्म,-अतश बाह्य-किया। अष्टाग योग मे यम नियम थाँरो ही भेद है। यूँ मन शुद्ध व्हे' जाय है।

सू० प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य ॥३४॥

१—प्राणायाम शूँ भी चित्त निर्मल व्हे' है।

२—श्वास ने लेवा छोडवा शूँ भी मन एक कानी लागे।

३—३३ वा सूत्र मे मन निर्मल करवा री चार भावना वताई। अठे एक और उपाय वतायो है अर्थात् प्राणायाम करवा शूँ भी मन शुद्ध व्हे' जाय है, ने पछे यो भक्ति रो अधिकारी व्हे' जाय है। प्राणायाम शूँ मतलब प्राण रो शोधन है, ने अणी रा मही ने म्होटा नराई भेद है। यो समाधि पाद व्हेवा शूँ अठे मही

---

(५) प्र०—हे गुरो एक तत्व का अभ्यास यही है या और भी कोई है ?

शूं मतलब व्हे'गा। यो जो नाक में श्वास आवे जावे शो प्राण नी है, या वात तो शारा ही जाणे है। क्यूंके पाणी में डूबे, जॉफ आवे, दम रुक जाय, तो भी धड़को व्हे' जतरे के' के प्राण है, ने वीं रो खुलाशा (रूप) निशाण नाक में आवे जावे जो श्वास है। अबे मही प्राण ने शोधन कर प्राणायाम कूंकर करणो ? अणी री भी नरी रीतौं वताई है। पण ईं शूं मालम पड़ जाय, के प्राण पे ओशान राखणी ईं में सब तरे' रा प्राणायाम रो सार आय गयो। मुट्ठी ने गाढ़ी खूब गाढ़ी कणी शूं करां हां। श्वास ने, नाक बंद कीधा विना कणी शूं रोकां हां ? ई हीज मही प्राण रा काम है। वणी'ज प्राण शूं जाणे प्राण पकड़ लेणो-आखा ही डील में ठा'म लेणो। नाडा छोड (पेशाब) री हाजत ने रोकती वगत कणी'क एक आंतरिक संकेत शूं रोकां, यूं ही अणी प्राण ने रोकणो प्राणायाम वाजे है। ज्यूं—**"नासा में आवणो जाणो श्वासा रो ज्यो समाय ले'।"**

यू पकड़ शूं प्राण ने लेणो ने ठामणो ही प्राणायाम वाजे है। अणी ने ही मूळ सूत्र में **"प्रच्छर्दन विधारण"** कियो है। ज्यूं—

"करतां प्राणायाम ने, तरग्या पतित अनेक।
नाद ब्रह्म रे मांय ने, देखे खेल अनेक॥"

मैत्री आदिक भावना, व्यवहार में मन निर्मळ करवावाळा रे है, ने साधन करती वगत जणी रे मैत्री आदि री आवश्यकता नी व्हे' तो प्राणायाम शूं निर्मल कर लेवे।

उ०—हे* सौम्य! विधियुक्त प्राणायाम करना यह भी एक-तत्वाभ्यास है।

४—श्वास ने निकाळणो ने खेंचणो जो प्राण रो काम है, अणी शूँ भी मन शुद्धव्हे' ने ठे'रवा लाग जाय है। अणी ने प्राणायाम भी के' है। यो भी सहज ने स्वाभाविक उपाय, मन ने सुधार ने ठे'रावा रे लायक करवा रो है। अर्णा दो ही उपायां में महजता है अर्थात् व्हे'ता ही सवां रें ही रे' है। केवल शारण (तळाव शूँ पाणी खेतां में ले जावारो धोरा) रो पाणी क्यारे वाळदेणो है अर्थात् यूं नी, ने यूं, जाण लेणो, ने पछे तो स्वतः ही व्हेवा लाग जाय। क्यूंके स्वाभाविक ही स्वभाव है। वो स्वभाव पटकवा में कई अबकाई? अस्वाभाविक स्वभाव ही जदी अस्यो कर-लीधो, जदी व्हे'ती वात रो कई भगड़ो।

सू०—विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थितिनिबंधिनी ॥३५॥

१—कोई अनोखी चीज दीखवा लाग जाय अणी शूँ मन ठे'र जाय है।

२—मायला अनोखा सुख दिखवा लाग जाय, तो भी मन एक कानी लागे है (अणी ने विषयवती प्रवृत्ति के' है।

३—मन रो निर्मळ व्हे'णो ज्यूं भक्ति रो उपयोगी है, यूं ही मनरो ठे'रणो भी भक्ति रो उपयोगी है। निर्मळ व्हियां विना मन

(५) प्र०—हे भगवन्! और भी कोई इस अभ्यास का (तर्ज) है या नहीं?

उ०—हे प्रिय! विषयों में ही चित्त चञ्चल रहा करता है। अब

ठे'रे नी। ठे'रयाँ विना निर्मल व्हे'नी, ने अगी विना विश्वास, उमंग, शांति, ने विवेक व्हे'शके नी, ने अणाँ विना परमात्मा (ईश्वर) में भक्ति व्हे'नी। जी शूँ सूत्रकार आज्ञा करे, के आपाँ देखाँ, शुणाँ, अणी-वचे भी महा सुंदर दिसणो शुणणो जदी मिल जाय, जदी योगी रो मन वणी में ठे'र जाय। ज्यूँ कतराक रे शब्द प्रगट व्हेवा शूँ तरे' तरे' रा राग, ने वाजा, ने शब्द शुणाय है, कतराक ने प्रकाश दिसे, 'ज्यूँ चन्द्र, सूर्य, दीवा, मणि,' तारा. आग्या आदि नरी तरे' रा, कणी वगत महा सुंदर सुगंध, ने कदी स्वाद, तो कदी गलगली पड़े ज्यूँ कोई आछी चीज अटकवा शूँ पड़े, कणी वगत अणाँ सबाँ रो सार इष्टदेव रो रूप दिसे, जणी मे ई सब ही वाताँ एक ही आय जाय। जदी वणी योगी ने संसारी वाताँ पे रुचि नी रे'। ज्यूँ दुर्गंध पे, सुगंध सूघवा-वाळा ने रुचि नीं रे, अणी शूँ योगी रो विश्वास वंध जाय, ने यो जाण ले, के जणो संसार रे वास्ते मनख मर रिया है, यो तो अणी रो मळ है। जदी आपाँ जाणता के संसार सिवाय कई है। पण या तो नवी दुनियाँ लाद गी', ने फेर अठी ने चालवा शूँ जरूर अधिक लाभ व्हे'गा, यूँ वणी ने शास्त्र पे विश्वास, शास्त्र री वात चोड़े देखवा शूँ व्हे' जाय, ने अणी शूँ ही द्रष्टा (ईश्वर) में विश्वास व्हेवा शूँ वो जन्ममरण शूँ छूट जाय है। अणी रे वास्ते मैत्री आदि भावना चावे, ने प्राणायाम, ने पछे गुरु कहे जणी जणी

दिव्य (अलौकिक) विषय मिल जाय तो इन तुच्छ विषयों को छोड़ कर चित्त उधर ठहर जाता है—एकाग्रता का इसे अभ्यास हो जाता है, अर्थात् दिव्य विषय मिल जाने से चित्तशुद्धि होती है अर्थात् योग में विश्वास उत्पन्न हो जाता है। इसको भी एक तत्वाभ्यास कहते हैं।

जगा' मन ने ठे'रावा शूँ ई वातां दीखे है। क्यूँ के मन साफ व्हियाँ विना ठे'रे नी, ने ठे'रयां-विना ई वातां दीखे नी, ने विना देख्याँ विश्वास व्हे' नी, ने अणां विना ही भक्ति कर शके, वो ऊँचो अधिकारी है, पूर्व-पुण्य री वात है।

४—यूँ अणां सहज दोही उपायाँ मे शूँ व्यवहार में मैत्र्यादि, ने त्याग में प्राणायाम शूँ मन ठे'रे, जदी धारणा री योग्यता मन में आय जाय। वणी शूँ धारणा वैराग्यपूर्वक करे जदी दिव्य पाँच ही विषय रो साक्षात् कर शके, जदी लौकिक विषय में ही मन अश्यो लागे जदी दिव्य मे लागे अणी रो के'णो ही कई। अने वैराग्य रा कारण शूँ वणां मे फँसे तो नी, पण शास्त्र, गुरु, ने अनुमान पे श्रद्धा आवा शूँ परमार्थ में वणी री चाल तेज व्हे' ने वो झट ही मुकाम पे पूग जाय। अणी वास्ते विषयवती प्रवृत्ति ने भी विषय छोडणा है, तो भी कांटा शूँ कांटा री नाईं तेज कीधा है।

—०::०—

सू०—विशोका वा ज्योतिष्मती ॥३६॥

१—नरभे' प्रकाश सुरता ने मिलवाशूँ भी सुरता ठे'र जाय है।

२—मायलो उजाळो वा समझ री निर्मळता व्हे' जाय, तो भी मन एक कानी लागे। (ई ने विशोका ज्योतिष्मती के'है)।

३—ई पे'ली रा ३५ वां सूत्र में किया सिवाय मन ठे'रवा रो एक यो भी उपाय है, के शोक रहित उजाळा री कानी मन रो

(५) प्र०—हे प्रभो ! और भी कोई एक तत्वाभ्यास है ?

लागणो, ने वणी री या विधि है, के यूँ विचारणो, के आपाँ हरे'क काम उजाळा में कराँ हाँ। पछे वो उजाळो चावे वीजळी रो व्हो' वा चाँद-सूरज-आग रो, पण काम करवा में उजाळो जरूरी है। क्यूँके उजाळा विना तो कई खबर नी पड़े, जदी आपाँरा विचार रो यो काम कणी उजाळा शूँ कर रियाँ हाँ? यूं अणी शोक रहित उजाळा री कानी मन आवा शूँ ठे'र जाय है ज्यूं—

> नी प्रकाश शके जी ने, चाँद सूरज आग भी।
> जठा शूँ नी फिरे पाछो, म्हारो परमधाम वो ॥१॥
>
> श्री गीताजी

ज्यूं कणी घर में एक छेकला (छिद्र) में शूँ उजाळो आवे, ने पछे वणी शूँ घर री चीजां दिखे। यूं ही यो हृदय-कमळ में आवा शूँ सब दीखे है, ने यूँ अणी में मन लागवा शूँ झट ईश्वरप्रणिधान व्हे'ने समाधि व्हे' जाय है, खास करने ईं उजाळा में "अहं" (म्हूँ) पणो दिखणो चावे।

४—ज्यूं पांच ही दिव्य विषयाँ री प्रवृत्ति की', यूं हीं अणी वचे विशेष एक विशोका-ज्योतिष्मती प्रवृत्ति हृदय-कमळ में ध्यान जमा वा शूँ व्हे'है। वा बुद्धि रो वैभव वतावावाळी व्हे'है, वणी में शोक नी व्हे'है, प्रकाश वठे भी व्हे', पण यो प्रकाश स्वाभाविक, ने शांत व्हे'है। पण पांच विषयवाळी में या वात नी व्हे'है, तो भी अणी में भी अस्मितामात्र, ने बुद्धि रे' जावा शूँ विषयवती'ज

उ०—हे सौम्य! शोक से रहित सात्विक प्रकाश के दिखने से भी चित्त ठहरने लगजाता है।

श्रणी ने भी समभणी चावे। या भी है, सविकल्पतावाळी'ज, पण श्रणी शूँ विशेष थिरता जणाय है। ज्या विदेह प्रकृति, लय ने अनुभव व्हियां करे है, श्रणी शूँ ई ने विशोका कियो है।

सू:—वीतरागविषयं वा चित्तम् ॥३७॥

१—महात्मा रा चित्त रो विचार करवा शूँ भी श्रापणो मन ठे'र जाय है।

२—जणाँ रो मन संसार में नी उळमे, श्रश्या (महात्मा) रो विचार करवा शूँ भी मन एक कानी लागे है।

३—जश्या मनख रो विचार कराँ, वश्यो ही श्रापणो मन व्हे'जाय है। ज्यूँ वीर रस शूँ वीररस री उत्पत्ति व्हे'जाय, यूँ ही जणाँ रा मन में राग द्वेष नी है, श्रश्या महात्मा रो 'विचार करवा शूँ वणाँ रा चरित्र देख, शुण, वणाँ रा चित्ताँ री हालत विचारवा शूँ वश्यो ही श्रापणो भी चित्त व्हे'जाय है। जदी'ज के'वे के **संगत शूँ गुण ऊपजे''** ई शूँ महात्मा रा चित्त-चरित्र पे ध्यान देवा शूँ श्रापणो भी मन ठे'र जाय है।

४—श्रथवा जदी विषयवती ई दोही व्हेवा शूँ वैराग

५—प्र० हे योगनिधे ! और भी कोई एकतत्व का अभ्यास है ?

उ० महापुरुषों के चित्त का ध्यान करने से भी चित्त ठहरने लगता अर्थात् एकाग्रता-एकतत्व का अभ्यास हो जाता है।

नोट—इसे वासना योग भी कहते हैं।

वध्याथका ने नी सुवावे तो वीतराग वैराग्यवान् जी बडा वडा शुक्र थामदेव तीर्थं-कर रा चित्त रो वा वगाँ रा चरित्र रो ध्यान करे तो भी चित्त वणी तरे'रो व्हे'ने ठे'र जाय। जदी'ज—"**सोड जस गाय भगत भव तरही**।" कियो है। जश्या चरित्र रो मनन अतश शूँ करे, वश्यो ही चित्त वणजाय। अणी वास्ते विपयवती नी सुहावे वा, अणी शूँ निकळणो व्हे' तो वीतराग रा चित्त ने विचारे, ता वो अणाँ शूँ ही आगे निकळ, ने वैराग्यवान री पदवी ने पाय'ने मन ने वश करवा रा स्वभाववाळो व्हे'जाय।

सू०—स्वप्ननिद्राज्ञानालम्बनं वा ॥३८॥

१—सपना, ने नींद रा ज्ञान पे ध्यान राखवा शूँ भी मन ठे'र जाय है।

२—नींद ने सपना री ओशान, ने याद करवा शूँ भी मन एक कानी लागे है।

३ आपाँ ने नींद आवे है, ने सपना भी आवे है। या नींद, ने सपना री ओशान कठे रे' है। यूँ नींद ने सपना री ओशान री

(५) प्र०—हे भगवन्! इसका और भी कोई उपाय हो तो वह भीआज्ञा करें। क्योंकि सब के एक ही उपाय अनुकूल नहीं हो सकता।

उ०—स्वप्न में और नींद में जो ज्ञान रहता है उसमें मन लगाने से भी चित्त को ठहरने का अभ्यास होजाता है। यह भी एक तत्वाभ्यास है।

कानी मन लागवा शूँ भी मन ठे'र जाय है अर्थात नींद री अथवा सपना री जठे याद है, वठे मन लागणो भी मन ठे'रवा रो कारण है।

६—जो वैराग में हीज उळझ ने ठे'राय जाय, तो शून्यता हीज रे'जाय, । जीं शूँ वैराग्य शूँ प्रकृतिलय व्हे'तो दीसे, स्वप्न ने निद्रा रा ज्ञान रो अवलबन करे, तो वणी वैराग्य री शून्यता शूँ निकळ, ने ज्ञानावलंबी व्हेवाय जाय। अणी तरे' शूँ ई एक कानी शूँ छुडाय, ने दूसरी कानी उळझाय नीं दे', अणी री ओशान राख, ने आपाँ ने अनुकूल पड़ती व्हे' वशी कर्मशुद्धि करणी चावे, जणी शूँ तरे' तरे' रा उपाय भूमिकानुसार विकल्प कीधा है। कोई कणी रे, ने कोई कणी रे उपयोगी दवा (औषध) री नाईं ई व्हे'है।

सू०—यथाऽभिमतध्यानाद्वा ॥३६॥

१—मुरजी माफिक चावे जणीरा ही ध्यान शूँ भी मन ठे'र जाय है।

२—मन लागे जणी में ठे'राय देवा शूँ भी मन एक कानी लागे है।

३—जो जो वस्तु आपाँ ने आछी लागे,. वणी री छाप माँय ने पड़ जाय है। अणी वास्ते चावे जणी ही आपणाँ शोख (पसंद) री चीज रे साथे आत्मा रो ध्यान करवा लाग जाणो, के अणी आपणाँ शोख रो साक्षी वा ठे'राव अणी'ज जगा' है। यूं भी

---

(५) प्र०—हे प्रभो ! अनेक स्वभाव के मनुष्य होने से एक ही उपाय सब के अनुकूल हो नहीं सकता इसलिये कोई ऐसा उपाय बताइये कि सब के अनुकूल हो।

मन ठे'र ने भक्ति रे लायक वणजाय है। क्यूके शोरा री कार्नी वृत्ति ठे'रे हीज है, ने वृत्ति ठे'रे जठे झट ही आत्माकार व्हे'शके है। क्यूके वृत्ति रो ठे'रणो ही योग है, ने जदी'ज आपणों आपणाँ इष्टदेव ने परमात्मा मान, ध्यान-करणो चावे, यूं सब ही के'है। सूत्र ३२ मा री वात **"एक तत्व रो अभ्यास सब विघ्न मिटावे है"** या अठे पाछी याद कर लेणी चावे। ईश्वर प्रणिधान, ईश्वर ने जाग ने प्रणव रो जप करवा शूँ व्हे'है। अणी रो ही नाम एकतत्वाभ्यास है। यूं ही अठा तक ईश्वर प्रणिधान री रीताँ वताई, अबे अणी सूत्र शूँ वणाँ री रातो बीडताँ (वद करताँ) थकाँ सूत्रकार आज्ञा करे, के चावे जणी मे ही अणी एक तत्व रो अर्थात् भक्ति रो अभ्यास व्हे'शके है—

"जो जो होमे तथा खावे, देवे जो जो करे सदा।
जो जो तापे सभी सो सो, म्हारे ही कर अर्पण ॥"

श्री गीताजी

या वात हीज जगा' जगा' गीताजी मे समझाई है। मन आपाँ णो सुहावती वस्तु हीं में जाय है। वणी मे ही ईश्वर रो भान व्हे'णो अणी सूत्र रो अर्थ है। जो धनुषधारी, मुरलीधर, जगदवा चावे जश्या ही स्वरूप में यो एक तत्वाभ्यास व्हे'णो चावे। अणी विना रो ध्यान तो ओछो है। जदी'ज भगवान् हुकम करे के-

"मानवी देह मे म्हारो, मान नी मानवी करे।
जाणे जी रूप नी म्हारो, सर्वाँ रो परमेश्वर ॥"

अणी तरे' शूँ कणी एक रो ईश्वरभाव शूँ ध्यान करणो, ने

उ०—जो अपने को सब से अधिक प्रिय हो, उसी एकतत्व (वस्तु) में वृत्ति ठहरा देने से भी चित्त शुद्धि हो जाती है।

वो एक आपाँ रे प्यारो सुहावणो व्हे'णो चावे, ने असुहावणो भी सुहावणा शूँ व्हे',ने सुहावणो भी परमसुहावणा (दृष्टा) शूँ है। यूँ मुरजी व्हे'जणी रो ध्यान करणो, जो खोटी वस्तु सुहावणी व्हे'ने वणी में भी यूँ ध्यान करे तो भी—

> "भट वो होय धर्मात्मा, अखूट सुख पाय ले'।
> वाण्या, कमीण, नार्यां भी, पाय लेवे परंपद॥"
>
> श्री गीताजी

जदी उत्तम व्हे' जणी री तो के'णो ही कही। शुद्ध ब्राह्मण, राजर्षि अणाँ री तो के'णो ही कही। ३३ वां सूत्र शूँ अठा तक रो वर्णन शोधन कर्म वाजे है अर्थात् भक्ति रे योग्य व्हेवा रो काम। अणी ने ही गीता में कर्मयोग कियो है।

४—अथवा आपाँ ने सुहावे जणी में ही मन लगाय दे'। पण लगावे एक तत्व मे। स्वप्न, निद्रा रो ज्ञान रा अवलंबन भी जणी वगत नी व्हे'तो पछे वणी वगत तो फेर ध्यान में शूँ हटे हीज। अणी में यो ३९ मों सूत्र कियो है। ई ३२ वाँ शूँ प्रारंभ कर ने ३३ शूँ एक एक शूँ उत्तरोत्तर ऊँची भूमिका रा अभ्यास किया है। पण, अणाँ ने एक एक ने हीज भूमिका माफिक साध, ने पछे आगे वधाय है। यूं अभ्यास पूरो व्हे'ने परं वैराग्य व्हे'णो ही कृत (अभ्यास री) कृत्यता (पूर्णता) है, या ही भाष्य में की' है। एक आज ने एक काले यूं नी, पण एक एक ने पकावता जाणो यो भाव है। के' वे,के दृढ़निष्ठा ही परमार्थ पंथ में चाल है, ने दोड़े ने ठे'र जाणो भटको है।

क्योंकि यों चित्त को ठहरने का अभ्यास हो जाता है। वह भी एक तत्वाभ्यास है।

प्र०—परमाणुपरममहत्त्वान्तोऽस्य वशीकारः ॥४०॥

१—छोटा शूँ छोटो ले'ने वडा शूँ बड़ा तक यो ध्यान व्हे'णो चावे।

२—छोटी म्होटी चीजां में शूँ मन रो भागणो मिटजाणो ही मन रो एक कानी लागणो है। यूँ भागवो छूटणो भी मन रो अधीन व्हे'णो है। (अणी ने ही वशीकार भी के'है)!

३—जणी चाल शूँ कोई पे'ली निशाणो लगावणो सीखे, वणी ने ठे'रयो थको ही निशाणो लगावणो पड़े है। सो भी पूरी कोशीश शूँ लागे है। परन्तु हाथ जम्याँ केड़े दोड़ता थका रे छेटी नजी'क सहज ही में लगाय देवे। यूँ ही पे'ली एक ही वस्तु पे मन ने ठे'राय ने अभ्यास करणो चावे, पछे वा चीज मुरजी व्हे'ज्या ही व्हो'। पण जदी हाथ जम जाय, जठा केड़े छोटी शूँ छोटी ने बड़ी शूँ वड़ी सब जगा' मन ठे'रवा लाग जाय है। क्यूंके मन ठे'रयां विना तो कई सावित ही नी व्हे'। ज्यूँ आपाँ एक काँकरो देख्यो। अबे देखणो के यो काँकरो कठे ठे'रवा शूँ दिख्यो। क्यूँ के जमी पे तो कदकोई पड्यो हो, ने आपाँ भी कदकाई वठे ऊभा हा, ने आंखाँ भी वीं पे फदकी ही पड़ी थकी ही। पण मन जतरे और कानी हो, यतरे वणी री खवर ही नी पड़ी। मन वठी आवताँ ही दीख गियो। जी शूँ सावित व्ही'के

---

५ प्र—हे भगवन्! अब चित्त को एक तत्व का अभ्यास हो गया यह कैसे मालूम होवे?

उ०— छोटे से छोटे और बड़े से बडे जिस पदार्थ में चित्त लगाया

मन ठे'र्‌यां विना कोई साबित ही नी व्हे'। जदी मन ने वत्ती देर ठे'रावा रो अभ्यास करणो ही योग बाजे है, ने अणी रो हरे'क वस्तु पे ठे'राय ने अभ्यास कीदो जाय है। कोई के'वे के बुरी कानी ठे'रे सो भी अभ्यास हीज व्हे'गा सो बात नी। क्यू के द्दष्टा री कानी वृत्ति (मन) रो आवणो हीं योग अभ्यास है, ने वो हरे'क वस्तु रे साथे द्दष्टा रो भान रे'वा शूँ व्हे'है। फेर वा हीज शका व्हे'के बुरी कानी भी मन ठे'राय ने यो द्दष्टा री कानी रो अभ्यास कीधो जाय, तो यो योगाभ्यास बाजेगा ? तो अणी रो जवाब यो है, के अवश्य बाजेगा, जदी'ज कि'यो है के—

> "जो वो महादुराचारी, म्हारी भक्ती'ज आचरे।
> साधू ही जाणणो वीं ने, वीं रो निश्चय-उत्तम ॥
> झट वो होय धर्मात्मा अखूट सुख पायले'।"

अणी सूत्र रो मतलब यो है, के जदी साधक एक वस्तु मे द्दष्टा रो भान नी भूले, तो पछे वणी रे अश्यो अभ्यास व्हे'जाय है, के छोटा शूँ म्होटा तक कठे ही नी भूले, ने यो ही अठा वठा री तृष्णा शूँ रहित वैराग है, के वणी रो मन दृश्य ने देख ने भी मांयने उलटतो रे' जदी जाणणो, के अबे मन पे अधिकार जमवा लाग गयो।

४—यूँ ३९ मां में किया माफिक ध्यान करतां आय जाय जदी मन ने ठे'र वारी-हरकगी जगा' ठे'रवा री तक (अवसर) मिलती

जाय, भागना छोड वहीं ठहरने लग जाय तब समझना चाहिये कि अब चित्त को ठहरने की आदत पड़ गई है अर्थात् अब एकतत्वाभ्यास (एकाग्र) करने की आवश्यकता नहीं रही।

रेवे। जणी शूँ सतत साधन **"यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र-समाधयः"** व्हे'तो रे'वे। क्यूँके अभिमत रे सिवाय तो यो ध्यान करे ही नी है। अनिष्ट रे साथे भी इष्ट तो नी'ज छूटे, ने इष्ट तो सब में आनन्द हीज है। अबे तो छोटा शूँ छोटा, ने वड़ा शूँ वड़ा तक जठे मन जाय वठे ही वो'रो वो ही **"जुग अंगुल कर अंतर, हराम भज हि मोहि नात"** व्हेवा शूँ मन आधीन व्हे' जाय। मन रो चंचळ स्वभाव छूट स्थिर स्वभाव व्हे'जाय। यो अभ्यास शूँ व्हे', ने अठा तक ही अभ्यास रे'। पछे तो अभ्यास नी पण स्वभाव पड़ जाय है।

—०:●:०—

सू०—क्षीणवृत्तेरभिजातस्येव मणेर्ग्रहीतृग्रहण-ग्राह्येषु तत्स्थतदञ्जनता समापत्तिः ॥४१॥

१—मन री तरंगाँ मिटवा पे मन निखाळस (दर्पण बिल्लोर) स्फटिक मणि जस्यो व्हे'जाय है। जदी वो अहंकार इन्द्रियाँ और धा'रली चीजाँ जणी में लागे, वणी सरीखो ही वो व्हे'जाय है। अणी तरे' री मन री हालत ने समापत्ति के' है।

---

(५) प्र०—एक तत्वाभ्यास (एकाग्रता का अभ्यास) हो जाने पर संप्रज्ञात समाधि किस क्रम से होती है ?

उ०—हे सौम्य! जिस चीज की वृत्तियें ठहरने लग जाती हैं, वह • चित्त निर्मल स्थिर दर्पणवत् हो जाता है अर्थात् उसकी चञ्चलता घट जाने से वह पदार्थाकार (पदार्थ जैसा) दीखने

उपरे अनेक उपाय वताया है। चित्त री वृत्तियाँ चित्त मे बैठ जाय है। ज्यू तरंगाँ पाणी में ठे'र जाय है, यू वृत्तियाँ रे समदवा री हालत रो नाम समापत्ति वाजे है। अबे या वा। आइ, के यू शुद्ध चित्त शू लाभ कई ? अणी पे के' के अश्यो मन चावे तो (ग्रान ग्रहीता) अहकार पे लागे तो अहंकार शू भी मिल जाय है अथवा इद्रियाँ (शब्द ग्रहण) मे लागे तो वश्यो ही वण रे', ने पदार्थ (अर्थग्राह्य) में लागवा शूँ वशो ही वस्तु वण जाय है, के अणी शूँ लाभ कई दूज्यू हीं मन तदाकार व्हियां विना तो कोई चीज दीखे ही नी, जदी साधन शूँ शुद्ध मन तदाकार-पदार्थाकार व्हे'जाय है। अणी में कई वत्ताई व्हो', अणी रो यो मतलब है, के विना शोधन कीधो मन पदार्थाकार व्हे', ने पाछो वो ही मन पदार्थ रो नाम लेवा लागे, ने घणो भट भट पदार्थ रो आकार, ने फेर वणी री भान करावे है। ज्यू पड़ा (खेल) करती वगत दड़ी घड़ी घड़ी री ऊँची नीची फुरती शूँ व्हे' तो रे'। यूं ही मन भी भट भट पदार्थाकार व्हे'तो रे', ने या हीज मन री अशुद्धता है, ने अणी'ज शूँ मन खुद ही दृश्य व्हेवा पे भी द्रष्टा रो दावो करतो रेवे, ने अणी शूँ दुःख पावे। पण यो शोधन व्हियो थको मन हरे'क

उस वस्तु के समान होने लगता है, तब उसे समापत्ति 'अर्थात् समाधि कहते हैं। यह स्थिरता जितनी अधिक हो वह उतनी ही ऊँची समाधि समझनी चाहिये। इस प्रकार के चित्त के ये तीन भेद हैं—बाहिर की वस्तुओं के, इन्द्रियों के, और अहंकार के, आकार का होना। प्रथम पाद के सत्रहवें सूत्र में संप्रज्ञात समाधि कही थी, उसी के ये तीन प्रकार कहे हैं। समापत्ति मे चित्त पदार्थाकार होकर दिखता है, जैसे चित्त को पदार्थ अलग दिखते हैं।

ऊपरे अनेक उपाय बताया है। चित्त री वृत्तियाँ चित्त में बैठ जाय है। ज्यूं तरंगाँ पाणी में ठेर जाय है, यू वृत्तियाँ रे समटवा री हालत री नाम समापत्ति बाजे है। अबे या वा। आइ, के यू शुद्ध चित्त शू लाभ कई ? अणी पे के' के अश्यो मन चावे तो (ज्ञान ग्रहीता) अहंकार पे लागे तो अहंकार शू भी मिल जाय है अथवा इद्रियाँ (शब्द ग्रहण) में लागे तो वश्यो ही वण रे', ने पदार्थ (अर्थग्राह्य) में लागवा शूँ वशो ही वस्तु वण जाय है, के अणी शूँ लाभ कई दूज्यूं ही मन तदाकार व्हियां विना तो कोई चीज दीखे ही नी, जंदी साधन शूँ शुद्ध मन तदाकार-पदार्थाकार व्हे'जाय है। अणी में कई वत्ताई व्हो', अणी रो यो मतलब है, के विना शोधन कीधो मन पदार्थाकार व्हे', ने पाछो वो ही मन पदार्थ रो नाम लेवा लागे, ने घणो झट झट पदार्थ रो आकार, ने फेर वणी री भान करावे है। ज्यू पड़ा (खेल) करती वगत दड़ी घड़ी घड़ी री ऊँची नीची फुरती शूँ व्हे' ती रे'। यूं ही मन भी झट झट पदार्थाकार व्हे'तो रे', ने या हीज मन री अशुद्धता है, ने अणी'ज शूँ मन खुद ही दृश्य व्हेवा पे भी द्रष्टा रो दावो करतो रेवे, ने अणी शूँ दुःख पावे। पण यो शोधन व्हियो थको। मन हरे'क

उस वस्तु के समान होने लगता है, तब उसे समापत्ति अर्थात् समाधि कहते हैं। यह स्थिरता जितनी अधिक हो वह उतनी ही ऊँची समाधि समझनी चाहिये। इस प्रकार के चित्त के ये तीन भेद हैं—बाहिर की वस्तुओं के, इन्द्रियों के, और अहंकार के, आकार का होना। प्रथम पाद के सत्रहवें सूत्र में संप्रज्ञात समाधि कही थी, उसी के ये तीन प्रकार कहे हैं। समापत्ति में चित्त पदार्थाकार होकर दिखता है, वैसे चित्त को पदार्थ अलग दिखते हैं।

चीज शूँ मिल जाय, जदी वास्तविक दृष्टा ही दृष्टा व्हे'ने मन दृश्य व्हे'ने रे'वा लाग जाय, जणी पे कि'यो है के—

"देखूँ देखूँ छोड़ने दीखूँ दीखूँ ठाण।
ई दीखूँ रो दीखणो ऊ'या अलख पिछाण ॥"

अलख पचीसी

अणी शूँ सूत्र में आज्ञा कीधी के अहं, इंद्रियाँ, ने विषय चावे जणी रो ही आकार व्हे'ने रे'वा लाग जाय वा समापत्ति वाजे है।

४—यूं जदी चित्त व्हे जाय जदी क्षीण-वृत्ति रो चित्त वाजे, ज्यूँ विना पाँख रो पंखेरू पड़्यो रे'वे। वणी वगत मन शुद्ध मणि री नांई निर्मळ व्हे'जाय, यो ही अणी रो सांचो स्वभाव है। वृत्तियां तो अविद्या शूँ ही। अबे तो ग्रहण करवा वाळो अहं, विषय, इंद्रियाँ जणी में चित्त लागे वणी'ज रो आकार व्हे',ने वस्यो ही रंग व्हे', ने घठा शूँ डगे ही नी। डगे तो जदी, के.वृत्ति चंचलता क्षीण नी व्हे'ती वा व्हे'ती। अबे अणी दशा रो नाम समापत्ति समझणो के ठीक हिसाब पे आयो। अणी री चंचळता ही रो उपद्रव हो, अबे तो है ज्यो ही व्हे'रियो है।

सू०—तत्र शब्दार्थज्ञानविकल्पैः संकीर्णा- सवितर्का समापत्तिः ॥४२॥

१—वणी समापत्ति में शब्द (ग्रहण) अर्थ (ग्राह्य) ज्ञान (गृहीता) रा विकल्प मिल्या व्हे'तो वा सवितर्का समापत्ति वाजे है।

५) प्र०—हे भगवन्! प्रथम मुझे यह समझाइये कि स्थूल पदार्थ के

२—पे'लो पे'ली यो मन नाम, नामवाळो, ने वणी रो विचार, अणाँ तीनाँ रो ही भेळो ही चलको ले'है (अणी ने सवितर्का समापत्ति के'है) यां अणी रे सुधार री पे'ली दशा है।

३—अगी रे पे'ली रा ४१ मां सूत्र शूँ समापत्ति कणी ने के' है या वात वताई। अबे वणी समापत्ति रा भेद वतावे है, के-वा समापत्ति दो तरे'री व्हे'है—एक ने सवितर्का, ने दूसरी ने निर्वितर्का के'वे है। सवितर्का वणी ने के'वे, के-मन तदाकार तो व्हे'जाय, पण शब्द (ग्रहण) अर्थ (ग्राह्य) ज्ञान (गृहीता) अणाँ तीनाँ रा ही विकल्प वणी में मिल्या थका व्हे' अर्थात् मन अणाँ तीन ही विकल्पाँ ने लीधाँ थकाँ जो तदाकार व्हे' जाय या सवितर्का समापत्ति बाजे है। ज्यूँ-घोड़ो, अणी में मन तदाकारव्हियो, तो वणी वगत तीन वाताँ मिली थकी है। वणाँ में मन तदाकार व्हियो। ज्यूँ-घोड़ो अश्यो नाम (शब्द), ने ठाण में वध्यो खुराँ-वाळो जनावर (अर्थ), ने वणी रो ई तीन वाताँ शामिल ही लेग्ने मन तदाकार व्हियो, ने अणी तरे' शूँ सारा रो ही मन तदाकार हरे'क वस्तु मे व्हे' है। भेद अतरो ही है, के थिरता लीधाँ थकाँ, ने आगत लीधाँ थकाँ शोधन कीधो। मन थिरता लीधाँ थको व्हे' है, जीं शूँ ही वणी ने समापत्ति के'वे है। परंतु या विकल्पवाळी व्हेवा शूँ पे'ला (नीचा) दर्जा री है। क्यूके

आकार चित्त कैसे दिखता है और इस हालत को क्या कहते हैं ?

उ०—जिसमें शब्द, शब्द का अर्थ और शब्द का ज्ञान ये तीनों कल्पना मिली हुई होवे और चित्त ठहर जावे (इन तीनों जैसा मालूम होवे) तो उसे सवितर्का समापत्ति (समाधि)

विकल्प तो वो वाजे है, के (९ मां सूत्र में) जणी मे खाली शब्द (नाम) हीज व्हे'जणी रो अर्थ देखो तो कई नी लाधे, ने जाणे कईक अर्थ व्हे' ज्यूं जणाय ज्यूं–**"सूरजपुर संध्या करे, वंध्या सुत रो वंश॥"** यूं ही घोड़ो, अश्व, तुरंग, ई केवल शब्द है, अणाँ रो अर्थ जाणे कईक वस्तु न्यारी व्हे' ज्यूं जणाय, ने यो पायगाँ में बध्यो है, यूं भी देखे, ने आपाँ वणी ने ओळख लीधो, यूं भी जणाय। जणी वगत चावे जणी चीज रो चावे, जो ही नाम लो, ने चावे, जो ही देखो, सुणो, वा चावे, जो ही विचारो वणी में ई तीन ही वाताँ मिली थकी रे'गा, ने ई रे'गा वठे तर्क अर्थात् हेरफेर भी व्हे'गा। अणी तरे' शूँ आत्मा-ब्रह्म रो मनन भी सवितर्क व्हे', ने वणी में भी ई तीन ही विकल्प लागा रे'है, ने जतरे यथार्थ ज्ञान भी नी व्हे'। फेर अणी रो खुलासो आगे आवे है। सूत्रकार एकतत्वाभ्यास कियो, वणी रो ही खुलासो कर रि'या है अर्थात् वणी री विधि ने वणी री बारीकी दर्जा, ने सिद्धान्त समझाय रिया है, के एक तत्वाभ्यास यूं व्हे'है।

४—वणी समापत्ति रा भी दो भेद है—सवितर्का, ने निर्वितर्का। जणी में शब्द, अर्थ, ने ज्ञान रा विकल्प मिल्या रेवे, ने अणाँ मे मन रँग्यो रेवे, वा सवितर्का वाजे है। ।(विकल्प रो लक्षण ९ मां सूत्र में कियो है) क्यूंके-विकल्प रेवा शूँ सवितर्क रे'वे हीज, पण

कहते हैं। यह निर्वितर्का से नीचे दर्जे की है, इससे ही स्थूल दृश्य की एकाग्रता समझो।

(नोट) नाम, पदार्थ और उसकी समझ मिली हुई रहने पर चित्त का दिखना, स्थूल पदार्थ के आकार चित्त का दिखना है। इसको सवितर्का समापत्ति भी कहते हैं।

चठे ही रंगाव शूँ समापत्ति भी व्हो'हीज । अणी शूँ वितर्क सेती ठे'रे, वी हालत ने सवितर्का समापत्ति के'वे है। सूत्र १७ माँ में चार सम्प्रज्ञात समाधि में पे'ली वितर्कवाळी चंचलता वाळी समाधि की'है, वणी रो ही यो स्पष्ट है।

—०◆◆०—

सू०—स्मृतिपरिशुद्धौस्वरूपशून्ये वाऽर्थमात्र-निर्भासा निर्वितर्का ॥४३॥

१—याद शुद्ध व्हे'जावा पे, केवल एक पदार्था-कार ही विकार छूटी थकी निर्वितर्का समापत्ति वाजे है।

२—यूँ तो वत्तो सुधर जाय, जदी अगाँ तीनाँ रो ही न्यारो न्यारो ज्ञान व्हेवा लाग जाय, या वणी शूँ वत्ती है। अणी ने निर्वितर्का भी के' है।

३—समापत्ति वा के मन तदाकार (कणी पदार्थ रे सरीसो) व्हे'जाय। वणी में शब्द, अर्थ, ने ज्ञान मिल्या थका रे'वे अर्थात अणाँ तीन वाताँ ने ले, ने तदाकार व्हे', वा सवितर्का समापत्ति वाजे। जणी में ई तीन वाताँ नी रे', केवल एक हीज वात रे', या निर्वितर्का समापत्ति वाजे। ज्यूँ-घोड़ो यो नाम, पायगां,

---

(५) प्र०—इस तरह मैंने स्थूल (सवितर्का) समझ ली, अब इसके आगे की सूक्ष्म हालत का नाम और लक्षण समझाइये ?

उ०—उपर्युक्त तीनों स्थूल विकल्पों से हटकर केवल सूक्ष्म पदार्थ मात्र की तदाकारता चित्त की रह जाती है, तब उसे निर्वि-

यो नाम, देख्यो यो नाम, ई तो तीन ही नाम ही व्हिया, ने नाम व्हिया, यो भी नाम हीज व्हियो, जदी जाणणो, के अरे या शुद्ध व्ही। क्यूँके अणी शुद्ध याद रे पे'लां अशुद्ध याद ही, अर्थात् एक गोटाळो हो। ज्यूँ—घोड़ो ठाण में है, या म्हूँ जाणूँ हूँ, अणी वात ने न्यारी न्यारी करे'ने देखी जाय, तो गोटाळो वसरे, ने शोधवा शूँ ज्या हालत व्हे', वा शुद्ध याद "स्मृति शुद्धि" वाजे। क्यूँके गोटाळा री स्मृति अशुद्ध ही। वणी में वस्तु तो एक ही दृश्य है, ने दीखे, देखावे, ने देखे, अर्थ (ग्राह्य), शब्द (ग्रहण), ज्ञान (ग्रहीता), यूँ न्यारा व्हे'ज्यूँ जणाय, जदी'ज कियो है के—

"काँकर के'वे मनख ने थूँ पण मूढ़ अजाण।
आँपाँ री वाताँ शुणे ज्या अलख पिछाण॥"

अलख पचीसी

अणी हालत में योगी रो अहंकार भी दृश्य (दीखवावाळो) व्हे'जाय है। पण बिलकुल ही पड़ नी जाय है, पण जाणे पड़ग्यो व्हे' ज्यूं भान व्हेवा लागजाय है। अणी हालत ने ही निर्वितर्का समापत्ति के'है अर्थात् दृष्टा, दृश्य रो सवितर्का वश्चे हो निर्वितर्का में विशेष विभाग व्हे'जाय है, अर्थात् गोटाळो वसर गियो व्हे' जश्यो विभाग अणी में व्हे' है। वणी में यो गोटाळो रे' ज्यूं दीखे ने अणी में नी व्हे' ज्यूं दीखे। साधारण अशुद्धि में गोटाळो हीज दीखे यो भेद है। भाव यो, के शब्द तो कोरो शब्द हीज व्हे'है। वणी में अर्थ, ने ज्ञान नी व्हे'है। शब्द रे साथे अर्थ रे'तो व्हे, तो

तर्का समापत्ति कहते हैं। इस में चित्त की अधिक निर्मलता हो जाती है, जो कि सवितर्का का अभ्यास करते करते स्वतः हो जाती है।

घोड़ो के'वा शूँ देखां अगरेज भी शमझ जाओ या आँपाँ री वातां मे जनावर भी समझो। यू ही वस्तु सब ही है। ज्यू शब्द वस्तु है, यू ही सब शब्द रहित वस्तु है, ने यू ही ज्ञान भी नाम रहित कईक वस्तु है। सूत्रकार रो यो मतलब क, दीखे मात्र है, पण यो के' णो भी शब्द, अर्थ, ज्ञान, ने मिलाय ने कि'यो जाय है, जी के मिल ही नी शके। क्यूके पांच विषय सिवाय तो और कई दीखे ही नी, ने वी आपस मे एक दूसरा ने जाण ही नी शके, ने यू ही मन रो भी समझ लेणो, के मन यो शब्द, दीखे यो ज्ञान, ने सकल्प विकल्प करे यो अर्थ, पण मन मे कूण मिलावे यू विचारवा ने अर्थात् मन आदि मे विचार ने सविचारा के'वे ने निर्विचारा जदी के' वे के मन मे भी शब्दादि तीन ही विखरवा लाग जाय।

४—वितर्क रे'वा रो कारण स्मृति (याद) री पूरी शुद्धि नी रे'वा शूँ है। दूज्यू चोईश (तत्वाँ) री याद भूल ने विपरीत मनरा आदि कूकर दीखे, ने फेर है, जो तो नी, ने अण व्हे'ती मन में कूँकर जम जाय। पण बिलकुल ही स्मृति री शुद्धि नी व्हे' जदी, तो समापत्ति ही नी वाजे, वो तो लोक तंत्र हीज है। अणी वास्ते पष्टि तत्र रो आवणो ही स्मृति परिशुद्धि है। अणी ने ही अर्जुन "**स्मृतिर्लब्धा**" कियो है। अणी मे चित्त, आपो (वितर्क) भूल वस्तु मात्र रा आकार रो व्हे' ज्यूं व्हे'जाय है। मात्र शूँ विकल्प विना री वस्तु समझणी, या हीज सही वात है, दूज्यूं कल्पना है।

(नोट) जब शब्द, अर्थ, ज्ञान का मिश्रण मिट जाता है (इसे ही स्मृति की परिशुद्धि कहते हैं) और ये पृथक् पृथक् शब्दादि दीखने लगते हैं, तब यह निर्वितर्का समापत्ति समाधि कही गई है।

है। क्यूके म्होटी चीज मही शूँ मही चीज मे शूँ आवे है, ने वणी में ही पाछी समाय जाय है। अगी रो विचार नाम, अर्थ, ज्ञान सहित कर तदाकारता व्हे'जाणो भी सविचारा है, ने अणी में भी नाम, अर्थ, ज्ञान, अलग कर देखणो निर्विचारा है अर्थात् प्रकृति भी जदी न्हय व्हे'ने दीखवा लाग जाय, अर्थात् सब शूँ मही भी है, या ही प्रकृति व्ही'ने जदी याही निर्विचारा समापत्ति शूँ दीखवा लाग जाय, जदी अणी रा विकार री तो वात ही कई।

४—वारी को (सूक्ष्मता) री हद्द ठेट प्रकृति तक है, यूँ एक शूँ एक स्थूल है, ने एक शूँ एक सूक्ष्म, पण अठे सूक्ष्म शूँ मतलब शब्दादि विकल्पादि सेती व्हे'ने वणाँ विकाराँ ने छोड़ ने-पष्ठितत्र रा चक्र पे बुद्धि चाल, ने चोईश तत्वाँ में बुद्धि रमती रमती सूक्ष्म री कानी वधे, अणी ने सूक्ष्म विषय कियो। मिश्र पदार्थ, ने अविमिश्र पदार्थ। मिश्र पदार्थ विकार, ने अविमिश्र प्रकृति विकृति ने जाणणी चावे। यू प्रकृति मे मतो व्हेणो सूक्ष्म विषयत्व गण्यो है। पण व्हे' अणी विधि शूँ।

(तन्मात्रा गधादि) सूक्ष्म हैं वैसे सब से सूक्ष्म विषय किसे समझना चाहिये ?

उ० सूक्ष्म विषय की अवधि शून्य पर्यन्त है अर्थात् सब से सूक्ष्म विषय अव्यक्त (शून्य) है।

सू०—ता एव सबीज समाधिः ॥२६॥

१—ई हीज सबीज समाधि है।

२—पण अणी मही में लागो रे', जतरे भी महासुख में कसर रे' जाय है (अणी ने सबीज समाधि के' है)।

३ - ई चार तरे' री जो पे'ली समापत्ति की' ई हीज सबीज समाधि वाजे है। क्यूँ के अणां में चित्त अवश्य ही पदार्थ रे जस्यो व्हे'जाय है। चावे पदार्थ महासूक्ष्म व्हो' वा म्होटो, पण पदार्थ रे आकार हीज मन व्हे'ने दीखवा लाग जाय, वा समापत्ति वाजे है। पण दीखे दीखे जतरेक देखवा भी मन लाग जाय है, ने अणी रो (मनरो) देखवापणो हीज अनर्थ रो मूल है। या ही सबीजता है। यद्यपि समापत्ति में मन रो देखवो, पड़ा री दड़ी रे हाथ रे अटकवा जतरो थोड़ो है, ने कणी वगत हाथ रो अटकाव नी व्हे' तो भी पे'ली रा वेग शूँ, वा डाका खाय हीज है, ने पाछो हाथ लागजावा शूँ ऊँचो डाको लागवालाग जाय है। यूँ ही अणां चार ही समापत्तियाँ रो हाल है, के मन ब्रह्म रा जोर शूँ आपणी सत्ता (अस्तित्व) में आवे, ने फेर ब्रह्म रा जोर शूँ देखवा रो दावो करवा लाग जाय। पण अठे एक वात याद राखवा री है, के चावे मन देखवा रो ही दावो करे, पण वारंवार वणी रो

---

(५) प्र०—हे भगवन् ! अब तो अव्यक्त (शून्या) कार होना ही परम समाधि (समापत्ति) समझना चाहिये क्या ?

उ०—हे सौम्य ! शून्य (अव्यक्त) पर्यन्त जो समापत्तियें (समाधियें) कही गई, ये ही सबीज हैं (फिर जन्म देने वाली हैं) इस-

दीखणो ही देखवा रा वणी रा भ्रम ने मिटावतो जाय है; ने पछे वणी रो देखवो भी दीखवा में आवा लाग जाय है, ने यूँ क्रम क्रम शूँ वधवा रा ही नाम सवितर्का, निर्वितर्का, सविचारा, निर्विचारा व्हिया है। समापत्ति मे या विशेषता है, के या भले ही सबीज ही व्हे', पण अणाँ में शूँ नीचे नी उतराय है, यो ही ईश्वरप्रणिधान मे, ने दूसरा अभ्यासादि रा साधन में भेद है। अन्य अभ्यास वैराग्य शूँ कठिनता शूँ ज्या सप्रज्ञात व्हे' जणी में घणे ही पड़वा रो (रुकवा रो) भव प्रत्यय रे' जाय है। पण वां वात अणाँ समापत्तियाँ में नी है—जी के एकतत्वाभ्यास शूँ व्हे' है ज्यूँ—

> "निराकार भजे वीं ने, पड़े मे'नत मोकळी।
> म्हारे में मन देवाँ री, सवाँ री शुण अर्जुण ॥
> म्हूँ हरूं जन्म ने मोत, देरदार करूं नही।"

अणी में अणाँ दो हीज समाधियाँ रा भेद वताया है। अणाँ ने सबीजा (बीजवाळी) यूँ कीं' के निर्बीज है, यो भी भान व्हे'गो बीज हीज है। क्यूँके अणी में भी शब्द अर्थ, ज्ञान, गुप्त रूप शूँ हीज है।

४—वी हीज विषय सूक्ष्म व्हो'वा स्थूल, पण विषया करावे

लिये निर्बीज समाधि ही सब से श्रेष्ठ (परम समाधि) समझना चाहिये। इस निर्बीज को ही चैतन्य समाधि भी कहते हैं और इस शून्य समाधि को जड़ समाधि कहते हैं। क्योंकि इनमें जड़ता का (दृश्य का) बीज रह जाता है, समय पाकर उसके फिर उठ आने का सदेह रह जाता है।

नोट—इसी को पहले भवप्रत्यय के नाम से कहा था।

है, जतरे सबीज समाधि वाजे है, ने बीज उग्यां विना तो रे'वे ही नी । चावे, यो नानो बीज व्हो' चावे झट ऊगे ज्यूँ व्हो'पण बीजवाळी समाधि उग्यां विना–ससार कानी आयां विना नी रे', जणी वास्ते पे'ली बीज व्हे'तो विना बीज री भी व्हे'जाय । बीज और तो कई नी, ससार राग सिवाय व्हे'ही कई शके । अस्यो ही ईश्वर में व्हे'जाय, तो पछे निर्बीज आवताँ देर ही कतरीक लागे, अठी री रख अठी करणी ही री' । वी चार ही सबीज होज समाधियाँ है, या नी भूलणी ।

सू०—निर्विचारवैशारद्येऽध्यात्मप्रसादः ॥४७॥

१—निर्विचार समाधि (समापत्ति) स्पष्ट व्हेवा पे परमात्मा री कृपा व्हेवा लाग जाय है।

२—जदी महीं चीजाँ रा तीन ही न्यारा न्यारा चलन्त लेंने यो साफ व्हे'जाय, जदी अणी ने मायली मदद मिले है (अणी ने अध्यात्म प्रसाद के'है) ।

३—यूँ तो परमात्मा री दया (कृपा-ज्ञान) एक रस सदा ही सर्वत्र है हीज, पण तो भी—

> "म्हूँ आत्मा सब री तो भी, अस्या पे ही दया करूँ ।
> अज्ञान री हरूँ सारो, अँधारो ज्ञान जोत शूँ ॥"
>
> श्री गीता जी

---

(५) प्र० हे भगवन् ! वह जड़ता का बीज कैसे नष्ट होता है ?
उ०—जब उपर्युक्त निर्विचार समाधि की निर्मलता को प्रदायाद

जदी पे'ली माफिक एकतत्व रो अभ्यास करतां करतां समापत्ति तक पोंच' जाय, ने वणी में भी निर्विकार समापत्ति सूक्ष्मविचार भी आत्मा रे दृश्य व्हे'ने द्रष्टा व्हेवा रो दावो छोड़वा लाग जाय, जदी जाणणो के अबे निर्विचारा समापत्ति री स्पष्टता व्हे'गई है। अणी हालत में अबे जाणे आत्मा हीज स्वयं आप द्रष्टापण ने नी छोड़वा पे दृढ़ व्हे'गयो व्हे' ज्यूँ व्हे'जाय है, अथवा जो तरंग द्रष्टा व्हेवा ने आवे वा ही दृश्य वण जाय, जाणे काळीनाग रा माथा पे भगवान् रो नृत्य व्हे'रियो है। काळी, फाटवा ने फण उठावे उठावे जतरे तो भगवान् वणी पे ही चढ़्या थका लाधे। श्री राधिकाजी रो प्रेम कृष्ण में, ने श्रीकृष्ण रो प्रेम राधिकाजी में व्हेवा पे भी अबे श्री राधिकाजी रो मान, ने श्रीकृष्ण भगवान् रो मनावणो अध्यात्म प्रसाद वाजे है। अठा पे'ली री में कईक कईक कोशिश रे'ती ही के द्रष्टा में सब है, पण अध्यात्मप्रसाद व्हेवा पे कोशिश ही छूट जाय, आपो आप ही द्रष्टा में पण व्हेवा लाग जाय। अणी ने के'वे है, निर्विचार री स्पष्टता और आत्मा (सम्बन्धी अध्यात्म) री कृपा वा प्रसाद वा प्रसन्नता।

४—जदी चार ही सवितर्का निर्वितर्का ने सविचारा निर्विचारा सबीज है, जदी निर्बीज कूंकर ने कशी व्ही? जदी

निष्काम योगी प्राप्त कर लेता है, तब उसे भी भीतरी अनुभव मिलने लगता है। इसी को अध्यात्म प्रसाद कहते हैं। अर्थात् निर्मल निर्विचार से अध्यात्म प्रसाद मिलता है।

(नोट) तेषा मेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता॥

निर्विचार निर्मळ व्हे' तो माँय ने ही वणी रे मदद खुल जाय, जणी शूँ मलिनता री बीज आपो आप ही नाश व्हेवा लाग जाय। या निर्मलता अतरी निर्मलता ज्यूँ नी है, पण खुद आपणी दृढ निर्मलता है, अणी शूँ एक साथे नवी नवोन्ज वात जणाय जाय। जाणे घोर नींद में शूँ एक साथे ही जाग गिया। पण एक भी वात अणी री वणावटी नी व्हे' सब सांच ने यथार्थ ही मूढा आगे आवे। अणी रो नाम अध्यात्म प्रसाद यथार्थ ज्ञान—साचो साक्षात्-कार है।

सू०—ऋतंभरा तत्र प्रज्ञा ॥४८॥

१—वणी हालत री बुद्धि ने ऋतंभरा के' है।

२—अणी मायली मदद शूँ साँची हीज समझ व्हे'जाय है। (अणी ने ऋतंभरा के' है)।

३—यद्यपि आगे री हालत सद्गुरु ही जाणे, पण जतरो सकेत कराय, वतरो तो करणो ही पडे-समझणा समझ ही लेगा। पण समापत्ति रो आरभ कीधो, वठा शूँ ही अनुभव री नाळ रा पगत्या शुरू व्हे'गया। शब्द, अर्थ, ने ज्ञान रो तो पे'ला पगत्या शूँ ही अनादर व्हेवा लाग गयो, पण सवितर्का ने समझ्या थका रे निर्वितर्का री वात अनुभव मे आय जायगा, ने पछे

(५) प्र०—हे भगवन् ! अध्यात्मप्रसाद होने पर फिर क्या हालत होती है ?

सविचारा ने निर्विचारा भी अणाँ रा ही वारीक भेद है, या देख लेगा। पछे निर्विचारा में अत्यन्त स्पष्टता शूँ अध्यात्मप्रसाद रो अनुभव व्हेवा लाग जायगा। वठे वो अनुभव कश्योक व्हे'तो व्हे'गा, अणी पे सूत्रकार आज्ञा करे, के वणी अनुभव रो नाम है **ऋतंभरा**। ठीक है, शब्द री गति नी व्हे' वठे भी कई तो के'णो पड़े ही, पण शब्द रो एक खोटो स्वभाव यो है, के अनुभव ने के'णो चावे। वणी शब्द री चसक शूँ भाँप ले', ने दूजा पाछा उत्तर जाय। वी जाणे ऋतभरा भी अतरी कीड्या री नाई दर मे घुसती व्हे'गा, परतु ऋतभरा कीड्याँ मायली कीड्याँ नी है, पण वा हवा है, ज्या कीड्या सेथी दरने उडाय दे' है। ऋतभरा साँच ने हीज जठे स्थान है। झूठ रो सस्कार भी नी व्हे' वणी अनुभव ने ऋतंभरा के' है।

४—अणी बुद्धि रो नाम ऋतभरा है। ऋतभरा व्हेवा शूँ अणी मे झूठ रो लेश ही नी रे'वे है, अशी बुद्धि या हीज है और नी है। या योग में निर्विचार री भी फेर निर्मलता व्हे' जदी व्हे' है। अणी वास्ते योगी अश्या व्हे', वी हीज अणी ने यूँ जाणे है, और कोई अणी री चर्चा करे वो जाणे आँधो भडरेटा खाने, ज्यूँ सममणो चावे। या तो योग रा घर री हीज निज वात है।

उ०—उससे ऋतभरा नाम की बुद्धि प्राप्त होती है (सत्य की पोषक को ऋतभरा कहते हैं।)

(नोट) "तेषा सततयुक्तानां भजता प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं त येन मामुपयान्ति ते ॥१॥

सू०—श्रुतानुमानप्रज्ञाभ्यामन्यविषया विशे-पार्थत्वात् ॥४६॥

१—शुणवा रा अंदाजा रा अनुभव शूँ भी अधिक यो अनुभव है, अधिक कई, अन्य ही।

२—वा साची समझ (ऋतभरा) अवार री अणी समझ मे आय ही नी शके, वणी रो अठोटो वध शके। क्यूँके वा तो वात ही और है, ने अणी शूँ वत्ती है।

३—भगवान् सूत्रकार नाळ ने तैं'कर चानणी पे आय गया है अर्थात् लाग लपेट छोड दीधी है। ऋतभरा रो खुलाशो करवा री दया करे है और उचित भी है। क्यूँके सूत्रकार योग के'रिया है, ने योग ही अणी रो खुलाशो नी करे, तो कई पडतल जीभ्या जोरी वाळा करेगा ? जो सूत्रकार रे साथे साथे बरोबर पगत्या चढने चानणी पे पहुँच गयो, वणी रे तो से'ज में ही यो दृश्य प्रत्यक्ष ही है, ने नीचे है, वो तो समझ ही कूँकर सके। पण अठे यो मतलब है, के जो एक पगत्यो ही नीचे है, यो अणी वात रा अधिकारी है, ने यूँ ही योग सब अधिकारियाँ ने यथाक्रम आगे आगे वढाय रियो है। अबे आपणाँ विचार ने अठे शिक्षा मिल है, वणाँ ने ववडाया (विदा किया) जाय है। विचार करो के,

---

(५) प्र०—ऋतभरा बुद्धि किसे कहते हैं ?

उ०—सुनी और अदाज की हुई उत्तम वस्तु से भी किसी अधिक और अन्य वस्तु को वह बुद्धि बताता है।

ऋतंभरा कशी ऊँची हालत व्हे'ती व्हे'गा, वठे कई सुख व्हे'गा, देखाँ भागवतजी में वठा रो हाल व्हे'गा, चा वेद पुराण कणी पोथी में नी तो कणी महात्मा ने पूछ्यां, जी अणी वात ने जाणता व्हे', वणाँ शूँ वाकब व्हे'जावां। सूत्रकार आज्ञा करे के यूँ नी'। चावे, जतरो शुणलो, ने अंदाज बाँधलो, पण या तो न्यारी'ज है, ने सब शूँ अधिक है, ने अनोखी है। अणी शूँ ईं ने प्रत्यक्ष करो जदी'ज जाण शकोगा। विना अनुभव तो संसारी वात रो भी अंदाज नी बँधे, जदी सब शूँ अधिक, ने अनोखी यूं कूँकर जणाय शके। जो थें म्हारा के'वा माफिक आय रिया हो तो समझ रिया हो, ने नी तो भूल्या जठा शूँ ही गणो, कई अटकाव है, शूधी वात, ने महालाभ है। कोड़ी कोड़ी रे वास्ते विचार करो तो थोड़ो थोड़ो अणी रो भी विचार करो, आप शूँ आप वधता जाओगा। विचार री तरज तो म्हें बताय रिया हां। अबे थाणे ही हाथे है। थाणाँ ही घर री वस्तु थें ही भूलो, ने बतावा पे भी नी हेरो, दीवो दे' वणी ने भी बुझावो तो थाँणी मुरजी, म्हूँतो बराबर अखंड प्रकाश ले'ने ऊबा हूं, मन व्हे' जदी ही हेर लो, जाणे यूं भगवान् सूत्रद्वारा आज्ञा कर रिया है।

४—क्यूंके दूसरा रा अठोटा, शुणी वाताँ, अणी सांची प्रत्यक्ष सूझ रे नखे पूग हो नी शके। पे'ली तो मनख रे विचारवा री रीत हीज भूल शूँ शुरुवात व्हे'है, ने वणी में फेर एक पे एक वधती जाय है। अबे अंधारा में दीखणो असम्भव व्हे' ज्यूं अणी ऋतंभरा प्रकाश विना अधारो हीज है, ने "अंधेनेव नीयमाना

(नोट) सुखमात्यंतिकं यत्त बुद्धिग्राह्य मतीन्द्रियम्।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्वत:॥

यथान्धा" व्हे'ता ही रे'है । अणी वास्ते योगानुसार शांति धीरप शूँ चाले तो निर्विचार री फेर निर्मळता व्हे'ने परम पद ने से'ल मे ही पाय जाय । पण या वात यूं नी; विशेषता है या नी भूलणी । दूज्यूँ अठा रो बीज रे' जायगा ।

सू०-तज्जः संस्कारोऽन्यसंस्कारप्रतिवन्धी ॥५०॥

१—ऋतंभरा रो संस्कार (अनुभव) दूसरा सब अनुभवाँ रो बाधक है ॥

२—वणी शूँ ई सारा विचार रुक जाय है, ने वणी रा ही वणी रा विचार रे' जाय है ।

३—अठे कोई के'वे के अशी उत्तम हालत है, पण पाछो वठा शूँ उतराय जातो व्हे'गा । अणी पे सूत्रकार आज्ञा करे के ऋतंभरा रो अनुभव दूसरा अनुभव ने आवा ही नी दे', सतत ऋतंभरा रो अनुभव जाग्रत ही रे' । दूसरा संस्कार रो आवणो ही उतरणो है, पण अठे तो बड़ा शूँ बड़ा ने उत्तम शूँ उत्तम अनुभवाँ ने शिक्षा मिल गई है अठे तो—

---

(५) प्र० – हे भगवन् ! इस अलौकिक ऋतंभरा बुद्धि से जो देखते सुनने तथा अनुमान में भी नहीं आ सकता, ऐसा उत्तम सुख (अनुभव) वहां पहुंचने वाले को ही होता है, यह मैंने समझ लिया । अब इसके बाद क्या हालत होती है सो आज्ञा कीजिये ?

"जगी लाभ वचे वत्तो, और लाभ गर्णे नईं।
जणी ने पाय ने म्होटा, दुख शूँ भी डगे नहीं ॥"

श्रीगीताजी

री हालत व्हे'गई है। कई सूर्यनारायण ने यो विचार व्हे'के यानी व्हे'जो अंधारा मे ठाकर खाय जाऊं,। अणी पे एक वात है, के एक परणी छोरी वजी री शानी री कुंआरीछोरियाँ शूँ वणी रा अनुभव री वाताँ कर री'ही। विचार्यां वी भी आपणी वुद्धि माफिक वणाँ वाताँ ने समझवा री कोशीश कर री'ही। वणी के'ताँ था भी के' दीधी के, म्हारे एक छोरो भी व्हे'गयो हो, पण वो आधी रात रो व्हियो, वणी वगत म्हारी नणद जागती ही म्हूं तो शूती ही सो छोरो कूँकर व्हे' है, यो तो नणद ने पूछवा शूँ खबर पड़ेगा। जदी एक अनुभवी लुगाई बोळी के बेटी और तो सब ठीक है, पण नीद में छोरा नी जणाय है, ने पूछवा शूँ नी, पण जणे जी ने हीज खबर पड़े है, दूजा ने नी, यूँहीं जाणे सो ही जाणे है, के बठां शूँ उतराय है, के नी", ने वा कशी हालत है—

जाणे मो ही जाण सी; या अण जाणी जाण।
नीतर अँवळी ताण सी, ऊथा अलख पिछाण ॥

अलखपचीसी

उ०—इस ऋतंभरा से होने वाला संस्कार (विचार) अन्य संस्कारों को (विचारों को) रोक देता है, अर्थात् इसके सामने अच्छे से अच्छे और बुरे से बुरे कोई विचार नहीं ठहर सकते।

(नोट) यं लब्ध्वा चापरं लाभं, मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन, गुरुणापि विचाल्यते ॥

४—अणी अध्यात्मप्रसाद री ऋतंभरा में भी संस्कार रूश्या नी थोड़ा ही रे' है। संस्कार नी रे' जदी तो कई नी व्हियो, पण वीं संस्कार सत्य (ऋतंभरा) रा रे' है। अणी वास्ते अगाँ, ने वणाँ संस्काराँ में नरोई भेद है—पूरब पच्छिम रो भेद है। अणाँ शूँ सस्कार बीज मिटे, ने वगाँ पे'ली रा (अविद्या रा) शूँ सस्कार दिन दूणाँ ने रात चौगणा व्हे'ता जाय अर्थात् एक बीज-पणो मिटावे, ने दूजो सामो वधावे, यो ही ऋतंभरा, ने दूसरा संस्काराँ रो भेद है, साँच भूठ रो फेर अणी योग संसार रो अतरो है।

सू०—तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधान्निर्वीजः समाधिः ॥५१॥

१—अणी री भी रोक व्हेवा शूँ पछे रोक री हीज रोक व्हे'गई। अणी रो हीज नाम निर्वीज समाधि है।

२—ने पछे वगी रा भी विचार रुक ने अखंड महासुख व्हे' जाय है, अणी ने ही निर्वीज समाधि, सर्ववृत्ति निरोध, (सब तरगाँ रो ठे'र जाणो) देखे, जीं रो दीसे जी शूँ बिलकुल अलग व्हे'जाणो, ने कैवल्य आदि अनेक नाम शूँ के' है। पछे कई कर ो बाकी नी रे' है।

---

(५) प्र०—हे प्रभो ! जब इस प्रकार ऋतंभरा के संस्कार के सामने दूसरे संस्कार परास्त हो जावें, तब ही निर्वीज समाधि कही जाती है क्या ?

उ० —हे विज्ञ ! एक दूसरे संस्कारों का नामो निशान भी नहीं रहता, तब इस ऋतंभरा का संस्कार भी मिट कर निर्वीज

३—सूत्रकार आज्ञा करे के सब ही संस्कार (अनुभवाँ) री रोक करवा वाळो अनोखो ऋतभरा रो अनुभव है। वणी अनुभव रे मूँडा आगे दूसरा अनुभव आय ही नी शके। केवल एक-लो ऋतभरा रो अनुभव हीज क्रोडाँ, कई आवता, ने व्हिया, ने व्हे' रिया, सब अनुभवाँ ने रोक दे' है। पण अणी वात शूँ या वात पाई जाय, के दूसरा अनुभव वा संस्कार भी रे' जरूर है। क्यूके विना व्हियाँ यो रोके कणी ने। अणी पे सूत्रकार आज्ञा करे, के पछे यो रोकवा रो अनुभव है, अणी री भी रोक व्हे'जाय है अर्थात् कोई खजाना पे चोर ने रोकवा ने पे'रो लागे, पण चोर रो नाम निशाण ही नी व्हे'वठे पे'रो कणी रो लागे, वठे तो खुल्या खजाना है। जदी'ज श्रीकृष्ण भगवान कई शास्त्र नी राखे केवल चैन री वशी वाजे है अणी वास्ते ही भगवान् हुकम करे के—

"टीडका ने करे राख, लाय ज्यूँ सुलगाय ने।
त्यूँ ही या ज्ञान री लाय, सारा ही कर्म बाळ दे'॥"

अठे अणी समाधि पद री समाप्ति है। दूसरा सूत्र में जो योग रो लक्षण वृत्ति निरोध कि'यो, वो ही **"सर्व संस्कार निरोधात्"** शब्द शूँ पाछो के' ने समाप्त कीधो। अठे संस्कार शब्द री सब में अनुवृत्ति है, पण वृत्ति संस्कार एक ही वात है। अठे जो योग रो सिद्धान्त कियो गयो, वो, ने।सप्रज्ञात, ने अस-

---

समाधि हो जाती है (ज्यों-चोरों का नाम भी नहीं होवे वहा पहरे वाले किसकी चौकी देवे, फिर तो केवल धन ही धन-अलक्ष्य धन रह जाता है। यही निर्वीज समाधि योग का परम लक्ष्य-परम योग है।

प्रज्ञात मे कियो, वो एक ही है, पण वणी मे रस्ता री कठिनता बताय, अणी मे तीव्र संवेग री झट ही प्राप्ति, ने ईश्वर प्रणिधान शूँ सब शूँ शीघ्र प्राप्ति कूँकर व्हे' है ज्या बताई है। जो कोई के'वे के अणी में भी छोटी दीसे तो वणी मे विचारणो चावे, के ईश्वर प्रणिधान एकतत्वाभ्यास शूँ वधे कई कई बातां आवे है, वी बताई है, जी शूँ छेटी व्हे' ज्यूँ दीसे है, पण कियो केवल एकतत्वाभ्यास हीज है, जो के हर 'हालत मे आयो, ईश्वर में अर्पण व्हे'तो रे'णो है, ने यो ही सुगम ने उत्तम शीघ्र प्राप्ति रो मार्ग है।

४—ऋतंभरा रा संस्कार झूठ ने तो फरकवा ही नी दे'। केवल सांच हीं—असली सांच ने हीज लोंधों थकों व्हे', पण सांच रो सरकार भी झूठ ने साबित करे है, वो सांच रो सस्कार भी निरोध व्हे' जाय, ने सब वृत्ति निरोध नाम री निर्बीज समाधि व्हे' जाय अर्थात् वणी योगी रा मन मे शूँ झूठ भी व्हे' है, अश्यो संस्कार मिट जाणो ही निर्बीज समाधि वाजे है। लेश मात्र भी अन्यथा विचार री जड़ नी रे'गो ही निर्बीजता है। विचार नी रे'णो निर्बीजता नी है, पण अविद्या रो लेश संस्कार नी रे'णो ही योग है।

[यो योग शास्त्र रो समाधि पाद समाप्त हुवो]

—०※※※०—

प्रथम पाद का उपसंहार

(खुलासा)

—:०:—

हे भगवन्! दयानिधान!! आपने मुझ पर दया कर परमानंद की प्राप्ति और सम्पूर्ण दुःखों की बिलकुल निवृत्ति के लिये (सूत्र १, २ में) योग शास्त्र समझाया, कि सब वृत्तियों के रुकने से द्रष्टा (सूत्र ३ मे) (देखने वाला) अपने स्वरूप में स्थिर हो जाता है, यही योग है, और फिर अपनी उन वृत्तियों के (सूत्र ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११ में) नाम और लक्षण कर उनके रोकने के लिये अभ्यास (सूत्र १२, १३ में), वैराग्य के लक्षण और फिर दोनों (अभ्यास वैराग्य) की (सूत्र १४, १५, १६ मे) अवधि कह कर इन से होने-वाली प्रथम संप्रज्ञात समाधि के (सूत्र १७ में) चार भेद कहे। फिर पूर्ण अभ्यास वैराग्य से होने वाली (सूत्र १८ में) असंप्रज्ञात समाधि कह कर इस असंप्रज्ञात को न पाकर बीच ही में रुकने वालों का (सूत्र १९ में) फिर जन्म होना कह कर बीच में न अटकने वालों के (सू०-२०, २१ में) श्रद्धादि उपाय बतला कर इनके.(सूत्र-२३, २४, २५, २६ में) मन्द, मध्य तीव्र आदि भेद बताकर सर्वोत्कृष्ट शीघ्र प्राप्ति का उपाय (सूत्र-२७ में) ईश्वर प्रणिधान भी कहा। इसमें ईश्वर के स्वरूप और (सूत्र-२८ में) उसके स्मरण को कह, उस से होने वाले फल विघ्नों की निवृत्ति (सूत्र-२९ में) बताई। फिर विघ्नों के बढ़े हुये उपद्रव

दुःखादि की (सूत्र-३० में) निवृत्ति के लिये एकाग्रता का अभ्यास करना कहा। फिर (सूत्र ३१, ३२ में) उस एकाग्रता के लिये सात उपाय बताकर (सूत्र-३३ से ३९ तक में) स्थिर चित्त का लक्षण और उसके भेद कहे। फिर (सूत्र-४०, ४१, ४२, ४३ में) संप्रज्ञात के सवितर्कादि चारों विभागों का कथन किया और इन चारों से (सूत्र-४४ में) सूक्ष्म भव प्रत्यय को भी बीज सहित होने से सबीज (सूत्र-४५, ४६ में बाहर की वस्तु को लिये हुए) कही। फिर निर्बीज को कहने के लिये (सूत्र-४७, ४८, ४९ में) निर्मल निर्विचार से अध्यात्म प्रसाद (अन्तरीय अनुभव) कहा और उस से प्राप्त होने वाली ऋतंभरा बुद्धि (सूत्र ५० में) कह उस ऋतंभरा से सम्पूर्ण संस्कारों (विचारों) का अत्यन्त लय कह कर द्रष्टा के स्वरूपावस्थान रूप निर्बीज (सूत्र-५१ में) समाधि बताई। इसका तात्पर्य मेरी समझ में यह आया कि द्रष्टा का स्वरूप में अवस्थान (वृत्तियों से पृथकता जो कि वृत्तियों का द्रष्टा होने से स्वाभाविक ही है) ही सब वृत्तियों का निरोध है और वह निरोध किस प्रकार होता है उसका अधिकारी भेद से ही आपने यह सब विवरण किया है॥

उपायाँ ने नी समझ शके, अथवा नी कर शके, वणाँ पे कृपा कर यो दूसरो साधन पाद आरंभ करे है—जो से'ज में ही प्राप्त व्हे' शके–वो उपाय पे'लाँ ही के' दियो, पण ज्यूँ चड़कली (चिड़िया) पाँखड़ा ऊगवा पे बचा ने उडणो सिखावे है, जदी पे'ली ऊपरली डाळी पर बैठ ने बोले। पण जदी अतरी शक्ति बचाँ री नी दीखे तो पाछी वणी रे नजी'क री डाळी पे आय जावे है। यूँ ही कमजोर योग रा अभिलाषियाँ रे वास्ते ठेट शूँ पाछो योग रा वर्णन री यो दूसरो पाद है। अठे यो भाव है, के समाधि पाद रा अभिलाषी तो विरला ही पुरष है। बाकी सब ही अणी पाद रा अधिकारी है। जतरा मत धर्मां में उपाय बताया गया है, वी सब ई'ज है वा अणाँ रा रूपान्तर है अर्थात् ई दूसरा पाद ने मनुष्यमात्र रो धर्म हीज समझणो चावे। जो अणी पे नी चाले वो मनख ही नी है। जणी में अणाँ साधनाँ री जतरी कमी है, वणी में वतरी ही मनखपणाँ री कमी है। अणी वास्ते मनख मात्र ने चावे, के वो अणाँ पे चाले। मनख जन्म लीधो, ने वो अणाँ धर्मां रो अधिकारी व्हे'गयो। जो वो नी चाले, तो राक्षस वा पशु है। तप–के' है–सहन करवाने। स्वाध्याय के' है—मोक्ष री विधि रा शास्त्र ने। ईश्वर प्रणिधान के' है—घमड नी' करवा ने। सार अणी रो यो व्हियो के मोक्ष

रख कर गुरु के कहने अनुसार करने को तैय्यार है, उसके लिये परम आनन्द पाने का क्या उपाय है।

उत्तर—हे वत्स, ऐसे अधिकारी को क्रिया योग करना चाहिये। तप (सहनै करना) स्वध्याय (प्रणव आदि का जपना) और (सत् शास्त्र का मनन) और ईश्वर प्रणिधान (ईश्वर में सब कर्मों को

री विधि रो शास्त्रानुसार सहन करणो, घमड नी करणो। अणाँ तपाँ री वर्णन गीताजी मे आवे हीज है, के तीन तरे' रा तप है, ने फेर वर्णा रा तीन प्रकार है, ने '**करणो**' शास्त्र के' वे सो, ने '**ॐ तन् सत् यो कह्यो नाम' ने 'म्हारे ही आशरे कर्म शघला ही करतो थको।**' आज कल तप, दुःख देवा ने हीज समझ लीधो है। स्वाध्याय, माळा रा मण्या गुडकावणो नाम रारयो है, के'क एक आध पाठ मूडा शूँ कर लेणो, ने ईश्वर प्रणिधान रो यो भाव समझ लीधो है, के 'राम करे ज्यो व्हे' है', यूँ कर हाथ पे हाथ मेल बेठा रे'णो। सूत्रकार रो जो अभिप्राय है वो गीताजी रा श्लोक शूँ स्पष्ट व्हे' है। श्री भगवान् पतजलि हंस री नाँई है, जो पक्षियाँ में भी उत्तम समझ्यो जाय है, आकाशगामी व्हेवा पे भी पृथ्वी पे चालवा लागे, तो भी वर्ण री चाल री प्रशंसा व्हे'। पाणी में नी भींजे और तरतो भी रूपाळो लागे, ने चमकी लगाय ने मोती निकाळ लावे, ने दूध पाणी ने न्यारा तो एक यो हीज पक्षी कर शके है। यूँ ही साधन योग भी कह्यो, तो वो भी सबाँ रो शिरोमणी'ज है, ने समाधि विभूति कैवल्य री महिमा भी अणी'ज माफिक है, ने जड चेतन रा विवेक में तो एक ही है। पूर्व जन्म रा सुकृताँ शूँ कणी'क ने हीज समाधि पाद रो अधिकार मिले है। दूज्यूँ साधन पाद तो

अर्पण करना अर्थात् ईश्वर निमित्त काम करना) को क्रिया योग कहते हैं।

नोट—सहन करना (तप) और शास्त्र की आज्ञानुसार सहन करना (स्वाध्याय) और उसका भी अभिमान न करना (ईश्वर प्रणिधान

साराँ ही मनुष्यमात्र रे वास्ते है, ने तीव्र वेग शूँ साधन करवा वाळा रे समाधि छेटी नी है। कतराई के'वे, अस्यो उपाय स्पष्ट व्हे' जणी ने म्हें कर शकाँ, ने खाली भी नी जाय, वणाँरे वास्ते ही यो साधनपाद आरभ व्हे' है। यो हरे'क कर शके है, नैं अणी माफिक साधन करवा शूँ अवश्य समाधि सिद्ध व्हे', ने कोई खतरो भी नी है। अणी'ज साधन योग री गीताजी में जगा' जगा' प्रश्नोत्तर शूँ प्रशंसा कीधी है, ने आपणें भी के' है, के **'साध्या सिद्ध, ने राध्याँ रिद्ध'** व्हे' है। ईश्वर रे वास्ते समणो, ईश्वर रो विचार करणो, परमेश्वर रो आशरो लेणो, ई काम अखंड महासुख रे वास्ते है।

४—जणाँ रो मन सूधो है, स्वाभाविक ही शान्ति ने पसंद करवावाळो है, वणाँ रे तो समाधिपाद में घरया ही सूधा साधा उपाय बताय, सहज निर्बीज-जो असली योग है वो-समझाय दीधो है। पण चंचल चित्त व्हे' वणी रे कई उपाय करणो? वणी पे यो दूसरो अध्याय चाले है। अणी रो नाम क्रियायोग व साधनपाद है। दे'ली तो अस्या ने खमवा रो मा'वरो करणो चावे, जदी'ज आगला स्वभाव छूट, नया पड़ शके है, अणी रो ही नाम तप है। दूज्यूँ दोड़े ज्यूँ ही विषयाँ में विना रोक टोक दोड़वा शूँ कदी ठे'राय? पण खमती वगत भी मन शूँ, शरीर शूँ, खमती सुँवावतो सुँवावतो खमावणो प्रसन्नता शूँ ईश्वर रो आशरो राखणो, ने वणी रो नाम वा यश स्मरण करता रे'णो।

कहाता है। इस प्रकार तीनों एक ही क्रिया योग के नाम से कहा है।

"तयोस्तु कर्मसन्यासात् कर्मयोगो विशिष्यते ॥"
(गीता कर्म योग 'यही क्रिया योगः)

सू०—समाधिभावनार्थः क्लेशतनूकरणार्थश्च ॥२॥

१—यो क्रियायोग समाधि प्राप्त करवाने, ने कळेशां ने नवळा करवा रे वास्ते है।

२—अणाँ ने करताँ करताँ पाँच ही दुःख नवळा व्हे'ने मन महासुख रे लायक व्हे' जाय है।

३—अर्थात् क्रियायोग जो कियो के तप, स्वाध्याय, ने ईश्वरप्रणिधान, अणी शूँ कई फायदो है, तो वी पे सूत्रकार आज्ञा करे, के अणी शूँ समाधि रे लायक मन व्हे' जाय, ने पाँच ही कळेश नवळा पड़ जाय है। अणाँ पाँचाँ रा ही नाम, ने लक्षण आगे आवे है। ई कळेश, यूँ वाजे के अणाँ शूँ अवकाई पड़े है। अणाँ शूँ महासुख रे लायक विचार (मन) व्हेवे, ने दुःख नवळा (ओछा) पड़े है। कोइ के'वे, के जदी पे'ली रा अध्याय में समाधि री सब बात आयगी, फेर अणी क्रियायोग री कई आवश्यकता है? जणी पे के'वे, ई शूँ कळेश नवळा पड़ ने समाधि री योग्यता आवे है अर्थात् यो पे,ला पाद रो साधन है, ई शूँ ही अणी रो नाम साधन अध्याय है।

---

(५) प्र० हे भगवन्! क्या इस क्रियायोग से भी सम्पूर्ण दुःख सदा के लिये मिट कर परम–आनन्द मिल जाता है।

उ० क्रियायोग से क्लेश कमजोर (तनू) हो जाते हैं और समाधि की योग्यता हो जाती है। समाधि ही सब दुःख की नाशक और सुख का मूल है। यह पहले तुझे कहा हो है अर्थात् इस क्रम से समाधि की प्राप्ति होती है।

४—अणी क्रिया योग शूँ पे'ली तो सहन करणो, ने पछे वो भी ईश्वर री जप, ने वणी रा हुक्म माफिक प्रसन्नता शूँ, सहणो ने पछे वो भी ईश्वर रे आधीन व्हे'ने वणी रे हीज अर्पण कर देणो। अणी शूँ समाधि री भावना सहज में ही व्हे' जाय, ने कळेश आपो आप ही नवळा पड़ जाय। अणी विना यो काम व्हे'नी शके, ने क्यूँके कळेश तेज व्हे' जतरे समाधि री भावना नी व्हे' शके, ने समाधि री भावना विना कळेश ढीला नी पड़े। अणी वास्ते क्रियायोग शूँ दोई काम साथे ही व्हे'ता रे', जणी शूँ योगी सहज में ही नवळा कळेशाँ ने समाधि री भावना करतो थको मिटाय ने आप सहजस्वरूप ने सहज में पाय ले' है।

—०:०—

सू०—अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पञ्च क्लेशाः ॥३॥

१—अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, ने अभिनिवेश, ई पाँच ही कळेशाँरा नाम है।

२—मूर्खता, म्हूँपणो, मोह, खार, ने भय सब दुःखाँ रा मूळ ई पाँच हीज दुःख है। अणाँ री हीज नाम अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, ने अभिनिवेश है। ई हीज पाँच कळेश भी वाजे है।

(४) प्र० हे भगवन्! वे क्लेश कौन से हैं, जो क्रिया योग द्वारा तनु (कमजोर) किये जाते हैं। जिनके क्षीण होने से समाधि की योग्यता आ जाती है।

३—अने अविद्या कणी ने केवे है, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश कणी ने के'वे है, सो आगे बतावे है। कोई के'वे, कळेश तो ससार मे हजाराँ तरे' रा है, यणी पे सूत्रकार आज्ञा करे, के नराई नी है, केवल पाँच हीज है। ई मिटवा शूँ सब मिट जायगा। सब कळेशाँ री जड़ ई पाँच हीज कळेश है और तो अणाँरा डाळी पानड़ा है। मूरखता, म्हूँपणो, मोह, खार, ने भय ई पाँच हीज दुःख है। अठे या बात पैदा व्हे' है, के साधन करवा शूँ कळेश नवळा पडे है। ई मिटवा शूँ सब कळेश मिट जाय ने ई व्हेवा शूँ सब कळेश व्हे' जाय है। ज्यूँ—ज्वर में उत्ताप अरुचि, डीलदूखणो, बेचैनी, आदि व्हे' है, ने यणी रे मिटवा शूँ सब मिट जाय है। यूँ ही अणाँ पाँचाँ शूँ ही और सब क्लेश है, ने ई मिट्या ने सब मिट जाय है।

४—यणाँ पाँच ही क्लेशाँ रा ई नाम है-अविद्या (अज्ञान), अहकार, राग, द्वेप, ने आसक्ति। ई और कई नी है, जो पे'लो पाँच वृत्तियाँ की', जणाँ मे'ली विपर्यय वृत्ति रा हीज भेद है। पण आखा ही ससार रो— —घर यो हीज है। अणी'ज मे उळझया शूँ मनरा अनर्थ शूँ अनर्थ में उळझ ने महा झूठ री जाळ में पड़ ने तड़फड़वा लागजाय है। गुण गाढा पड़ता जाय, गांठाँ पे गांठाँ घोळावती जाय। भाव यो के अणाँ पाँचाँ शूँ क्लेश

उ० अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश, ये पाँचों ही क्लेश होते हैं। मुख्य ये ही पाँच क्लेश हैं, बाकी सब दुःख इन्हीं के भेद हैं।

भुगतणा पडे है। या हीज भूल ने दूजा दूजा क्लेशाँ मे दूजो दूजो उपाय करतो फिरे जदी'ज वो विपर्यय है।

—०*०—

सू०—अविद्याक्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम् ॥४॥

१—सब दु खाँ रो मूळ मूरखता है। पड्ये भनेई, वी दु ख दीखो या मती दीखो वा दीमो मिटो वा नवळो दीखो।

२—दीखणो, नी दीखणो, दीखणो नी दीखणो, ने नवळा दीखणो, ई आणाँ रा चार चार भेद है। अणाँ ने हीज उदार, प्रसुप्त, विच्छिन्न, ने तनु भी के' है। अणाँ सब दुखाँ रो मूळ मूरखता हीज है।

३—अबे अठे या वात आवे, के ज्यूँ सब क्लेशाँ रा मूळ ई पाँच हीज क्लेश है, यूँ अणाँ पांचाँ मे ही मुख्य क्लेश करयो है,

---

प्र०—इन पाँचों में भी मुख्य क्लेश किसको समझना चाहिये ?

उ०—अविद्या ही सब क्लेशों (दु खों) का मुख्य कारण है। हे वत्स ! कभी ये क्लेश छिपे पडे रहते हैं-जो समय पाकर ही मालूम होते है। उन्हें प्रसुप्त (सोते हुये) क्लेश कहते हैं। कभी ये कमजोर हालत में दीखते हे, वे तनू (निर्बल) कहे जाते हैं। कभी इनमें से एक दबता और दूसरा उठता है और दूसरा दब कर फिर और उठ खडा होता हे। इस उठने गिरने की क्लेशों की हालत को

के जगी एक रे मिटावा शूँ बाकी रा चार ही मिट जाय। जणो पे के' वे है, के एक अविद्या ही सब क्लेशाँ रो मूळ है। अणी रे मिटवा शूँ सब क्लेश मिट जायगा। अणी पे या वात आवे, के हरे'क क्लेश व्हे'ती वगत दूसरा क्लेश तो नी दीखे, ज्यूँ, राग री वगत मोह कठे परो जाय, ने राग री वगत क्रोध कठे रे' है—जो राग री वगत द्वेष नी व्हे' तो पाछो द्वेष री वगत कठा शू आय जाय है, ने राग री वगत द्वेष रे'वे, तो दीखे क्यूँ नी है। क्यूँके वो ही रीश करतो थको साथे ही प्रेम करतो नी दीखे, ने यूँ हो प्रेम रे साथे ही रीश करतो भी कोई नजर नो आवे। जदो एक क्लेश नजर आवे वणी वगत बाकी रा क्लेशाँ री कई हालत व्हे'है। क्यूँके म्हाँणे क्लेशां ने मिटावणा है, ने सब क्लेशाँ रा मूळ ई पाँच हीज है। अणाँ में भी एक अविद्या ही सबाँ रो मूळ है। जदी या बिलकुल मिटजावा री म्हाँने निश्चय कूँकर व्हे'। क्यूँके वे'वार में देखाँ तो भी आज अणाँ साधनाँ रे घट'जावा शूँ मनखाँ में अतरी फूटारोळ मचगी'है। जठी देखो वठी मनखाँ रा जीव ठिकाणे नी है। कोई कइ उपाय सुख रो विचारे, कोई कठीने ही

विच्छिन्न (अस्तव्यस्त) कहते हैं और जब एक ही क्लेश प्रबल होकर अन्य सब दब जाते हैं तो क्लेशों की इस दशा को उदार (प्रबल) दशा कहते हैं। अब चाहे सो क्लेश इन (प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न, उदार) चारों हालतों में से चाहे, जिस हालत में हो परन्तु अविद्या ही उनका कारण (मूल) समझना चाहिये, अर्थात् सब हालतों में सब क्लेशों का कारण अविद्या ही है।

(नोट) बालक में प्रसुप्त, साधक में तनु (सूक्ष्म), राग द्वेषवान में राग के समय द्वेष विच्छिन्न और द्वेष के समय राग विच्छिन्न

अक्ल दौडावे, पण सुधी वात है। अणी क्रिया योग ने मनरा साँचा मन शूँ नी पकडेगा, जतरे कदी भी सुख शान्ति नी व्यापेगा। चावे जतरा कानून, ने चावे जतरा नाचा कूदा करो। क्यूँके जणी रे वे'वारो ज्यो गेलो है, वणी'ज गेले चालया शूँ वो गाम आवे है। आथमणी कानी चाले, ने उगमणी कानी रा गाम में जावा रो इरादो करे, तो कूकर पार पड़े। आज भी थोडो घणोसुख दीखे सो भी अणी योग रो हीज अश है, यूँ शमझ लेणो चावे अणी वात ने योग रा अणाँ ने समझाया वठे समझावा रो विचार है, जणी शूँ अठे नी फेलाई।

(या टीका अठा तक हीज मिली है)

४—अणां पाच क्लेशाँ में भी मुख्य अविद्या ने हीज समझणी। वाकी चार तो अणी रा हीज पेटा मे है। अविद्या चार प्रकार री व्हे'गी है, ने वणी रा भी एक एक रा चार चार भेद व्हिया है। सुप्त, कतरी ही दाण ई क्लेश सूता रे'है, पण जदी कोई कारण व्हे' तो खबर पडे, के देखो अतरा ओटाळ कठे भरयो हो। यू ही तनू हालत में व्हे'जदी नवळा रे'वे, ने विच्छिन्न रे'वे, जणी वगत दबता जाय, ने बधता जाय, उदार व्हे'जदी चोडे एक क्लेश

होता है और उदार वह है, जो अपनी हालत में से जैसे अन्य से न दबे जैसे द्वेषी का द्वेष राग से न दबे। ये चार क्लेशों की हालत है, अविद्या के निवृत्ति होने पर इनरा बीज नष्ट हो जाता है वरन ये कभी सुप्त, कभी उदार, कभी तनू, विच्छिन्न होते ही रहते हैं।

"अज्ञानेना वृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः।"

(गीता)

हीज जोरदार वण्यो रेवे। एक दग्ध क्लेशावस्था है। जणी में चावे जो ही हालतां व्हो' असली वात नी छूटे वा महात्मा री व्हे' है वठे विपर्यय है।

—०卐卐०—

मू०—अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्य-शुचिसुखात्मख्यातिरविद्या ॥५॥

१—मिटे जीं ने अमिट जाणणो, शूगला ने पवित्र समझणो, दुःख ने सुख समझणो, आपाँ ने और जाणणो, यूँ ऊँधी समझ रो हीज नाम मूर्खता वाजे है।

(या टीका अतरी हीज मिली है)

२—मिटे जीं ने अमिट जाणणो, शूगला ने पवित्र मानणो,

(५) प्र० हे प्रभो! सम्पूर्ण क्लेशों में व्यापक मुख्य कारण अविद्या ही है, तो विद्या किसे कहते हैं यह कहिये?

उ० हे सौम्य! यह विपर्यय वृत्ति (उल्टीबुद्धि) ही अविद्या कही जाती है। अनित्य (नाशमान्) को नित्य (अविनाशी) समझना, अशुचि (अपवित्र) को शुचि (पवित्र) समझना, दुःख को सुख समझना और अनात्म (अपने से इतर) का आत्म (आप) समझना यही अविद्या है और यही सब दुःखों का (क्लेशों का) कारण है।

नोट—विषय, शरीर, वासना, अहंता, ही क्रम से अनित्य अशुचि, दुःख, अनात्मा हैं।

दु.ख ने सुख समझणो ने आपाँ ने ओर गणणो ही मूर्खता बाजे है। अणी ने हीज अविद्या के' है। सब तरे' रा दु ख री मूळ या हीज है।

४—अनित्य ने नित्य गणे, अपवित्र पवित्र माने, दुःख ने सुख समझे, अनात्मा ने आत्मा देखे, जणी समझ शूँ, अशी विपरीत विपर्यय री समझ रो ही नाम अविद्या है। अर्थात् ऊँधी बुद्धि ने अविद्या के' है। अणी वास्ते या सांची शूँ ऊँधी है, सांची समझ अविद्या नी, समझ रो नी व्हे'णो अविद्या नी, समझ व्हे'णो अविद्या नी, पण सांची समझ री ऊँधी समझ रो नाम अविद्या है। यूँ अविद्या ने ओळखी ने विद्या आई, ने विद्या आई ने सब व्हियो।

—:—:—:—

सू०—दृग्दर्शनशक्त्यो रेकात्मतेवाऽस्मिता ॥६॥

२—देखे जो, ने दीखे जणी रो एक व्हे' ज्यूँ व्हे'णो ही म्हूँपणो है। अणी ने हीज अस्मिता के' है।

---

(५) प्र०—हे भगवन्! सम्पूर्ण क्लेशों का व्यापक कारण जो अविद्या है, उसे मैंने समझ लिया अब कृपाकर आप ने दूसरा जो क्लेश "अस्मिता" कहा था, वह भी समझा दीजिये?

उ०—दृगशक्ति (देखने का स्वभाव) दर्शन शक्ति (दीखने का स्वभाव) अर्थात् देखने वाला और दीखने वाला कदापि एक तो हो ही नहीं सकते। परन्तु, इनको एक ही समझना ही अस्मिता (अहंता) है।

४—एक देखवा री शक्ति है, ने एक दीखवा री शक्ति है। देखवा री शक्ति कदी भी दीखवारी शक्ति नी व्हे' शके। क्यूँके वणी मे तो दीखवा री शक्ति ही नी है। अगव्हे'ती कूँकर व्हे'। यूँ ही दीखवा री शक्ति भी देखवारी व्हे'ई नी शके। पण ऊँधी समझ शूँ अणाँ ने ऊँधी कर ने मानले', व्हे' नी तो ई यूँ हीज दोयाँ ने ही शेळ भेळ करने अणी पे विचार ही नी करे, अणी रो ही नाम अस्मिता म्हूँपणो नाम रो क्लेश है। अणी ने जो न्यारो न्यारो कर शके, तो केवल व्हियो व्हियो त्यार है। पण विचार ही नी करणो, ने ऊँधी समझ नी छोड़णी ही हाथाँ शूँ भाटा उछाळ ने करम पे पटकणा है।

सू०—सुखाऽनुशयी रागः ॥७॥

२—सुख रे वास्ते विचार करणो ही मोह है। अणी ने राग भी के'वे है।

४—सुख ने याद करने वणी री तृष्णा वधावणो ही राग नाम रो क्लेश वाजे है। अणीं में भी अविद्या रे'वे है, जदी कुत्ता

---

(५) प्र०—आपने जो अविद्या आदि पांच क्लेशों के नाम कहे, उनमें तीसरा क्लेश राग कहा था, कृपा कर अब राग किसे कहते हैं सो भी समझा दीजिये ?

उ०—सुख का काम राग कहाता है अर्थात् सुख के वास्ते जो रिझ्ञादि हैं, वे राग हैं।

री नाईं विषयाँ में सुख समझ ने मन भटके। दूज्यूँ, तो विद्यावणताँ कई देर लागे। असली सुख ने समझ लें' जठा केडे फेर कई रियो। पण असली शूँ अँवळा नी जचे जतरे अविद्या ही कई व्ही', अणी वास्ते बारला सुखाँ मे ही सुख मानणो राग नाम रो क्लेश वाजे है। वीतराग रा मन री स्मृति भी अणी में घणी मदद कर साँची री कानी ले'जाय है।

सू०—दुःखाऽनुशयी द्वेषः ॥८॥

२—दु ख रे मिटावा रो विचार ही खार है, यो ही ज द्वेष वाजे है।

४—यूँ ही द ख ने याद करने वगी शूँ खार करणो द्वेष वाजे है। यो भी अविद्या रो ही कारण है, दूज्यूँ गेलेचालताँ दुःख शूँ खार क्यूँ कराँ। पे'लो तो विचारणो के दुःख कई व्हे' है, क्यूँ व्हे' है, ने मिटे के नीं', ने मिटे तो कणी शूँ मिटे, यूँ विचारे जदी तो अविद्या रे'वे ही कठे। पण यूँ ही विचारे तो भी मनोमन ही ऊँधी ही ज विचारे। पण चतुर्व्यूह योगशास्त्र रे अनुसार नीं विचारे, ने साँच तो एक ही ज व्हे' है, ने वा साँच विद्या योगियाँ ने ही ज सूझी है। दूसरा तो खाडा मे शूँ खाडा मे पडता जाय, ने योग रे गेले नी लागे अँवळी समझ नी छोड़े।

---

(५) प्र०—द्वेष जो चौथा क्लेश है, उसका क्या लक्षण है?

उ०—दु ख का काम द्वेष कहाता है अर्थात् दु ख के वास्ते जो उसकी निवृत्ति के विचारादि कार्य हैं ये द्वेष कहे जाते हैं

सू०—स्वरसवाही विदुषोऽपि तथा रूढोऽभि-निवेशः ॥९॥

२—समझणाँ में भी चमक रे'जाय, यो ही भय वाजे है। अणी ने अभिनिवेश वा मृत्युभय के' है।

४—आपणी'ज धुन में व्हेवावाळो, ने सबाँ में ही एक सरीखो जो एक धुन रो वण्यो रे'णो, अभिनिवेश नाम रो क्लेश वाजे है। क्लेशाँ री नीम अविद्या है, तो अभिनिवेश वणी रो कळश है। अणी में वड़ा बड़ा ने ही यो विचार आय जाय, के म्हूँ मर जाऊँगा, ने वण्यो ही कीड़ी कुंजर ने भी मरवा शूँ डरलागे। समझसोच ने देखे तो हाल कोई मरवो भुगत्यो व्हे' जश्यो जीव नीदीसे। क्यूँके मरणो, ने जीवणो एक जन्म में व्हे'ई नी शके, ने पे'ली री जो याद नी, पण अणी अभिनिवेश शूँ जणाय, के पे'ली रा संस्कार शूँ ही यो व्हे' है।

---

५ प्र—पाँचवाँ क्लेश जो आप ने अभिनिवेश कहा था, कृपया उसका भी लक्षण आज्ञा कीजिये ?

उ०—सब जीवों में चाहे वह अज्ञानी कीट हो, चाहे समझदार मनुष्य ही हो, जन्म से ही जो भय है, वह ही अर्थात् भय ही अभिनिवेश कहा जाता है। यह अज्ञानी कीट में भी होता है और जो समझदार मनुष्य है, जिन्होंने यह निश्चय कर रक्खा है, कि जन्म लेगा वह अवश्य ही मरेगा उनमें भी मृत्यु भय होता है अर्थात् वे भी यही चाहते हैं कि हम नहीं मरें और अज्ञानी भी यही चाहता है। यही मृत्युभय अभिनिवेश नाम का पाँचवाँ क्लेश है।

सू०—ते प्रतिप्रसव हेयाः सूक्ष्माः ॥१०॥

२—अणाँ पाँच ही नबळा व्हिया थका दुखाँ ने साँचो समझ शूँ मिटाय देणा चावे।

४—अणाँ क्लेशाँ ने मिटावारो उपाय यो है, के पे'ली तो अणाँ ने क्रिया योग शूँ नबळा कर देणा, पछे अणाँ री शक्ति क्षीण व्हेवा शूँ म्होटा, ने छोटा मे (वारीक में) अभिनिवेश ने द्वेष मे, ने द्वेष ने राग में, मिलावता जाणो। यूँ ही अविद्या मय सब व्हिया, ने विना बीज रा व्हिया थका देखवा मात्र रा रे' जायगा, पछे पाछा भूगा नी फूट शके। क्यूँके असलियत समझायगी। असलियत समझ लेणो ही विद्या है, ने योग री भूमिका है, आखिरी या ही है। अणी मे बिलकुल कचाई नी रे'णी चावे। दूज्यूँ एक में शूँ अनेक अनर्थ पाछा प्रगट व्हे'जाय सो पाछा समेट देणा।

---

५ प्र०—जब क्रिया-योग से ही क्लेश कमजोर होजाते हैं, तो फिर निर्बीज समाधि तक को झंझट की क्या आवश्यकता है ?

उ०—इनका बिलकुल नाश निर्बीज समाधि बिना नहीं होता। क्योंकि सूक्ष्म क्लेश भी पीछे उठ आते हैं इसलिये निर्बीज समाधि से इनका बिलकुल नाश कर देना चाहिये।

नोट— योगसन्न्यस्तकर्माणं, ज्ञानसंछिन्नसंशयम्।
आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय ॥१॥

(गीताजी)

सू०—ध्यायानहेयास्तद्वृत्तय: ॥११॥

२—पे'ली जोरावर दु खाँ ने महासुख रा काम (क्रियायोग) शूँ नबळा करदेणा चावे ।

४—अणाँ री वृत्तियाँ ने ध्यान कर, ने मिटावणी चावे। ध्यान शूँ विचार, विद्या सहित एकाग्रता शूँ है। अ गी'ज ने प्रसख्यान भी के' है। जदी यूँ ध्यान शूँ ही वृत्तियाँ नबळी पडजाय, जदी प्रति प्रसव शूँ समेटवा शूँ बीजभाव नष्ट व्हे'न अविद्या नष्ट व्हे'जाय। वृत्तियाँ ने ध्यान शूँ कमजोर कर देणो तो सूधो है, पण कमजोर कर बिलकुल मे'ल मिटाय देणो, (बीज मिटाय देणो) अविद्या रो सस्कार हीज नष्ट कर देणो मुशकिल है, ने यो नी व्हिया जतरे पाछो सब अनर्थ व्हेवा रो, कदी-न कदी।

---

(५)प्र०—हे भगवन् जब निर्बीज समाधि से ही इन क्लेशों का बिलकुल नाश होता है, तो फिर निर्बीज समाधि का ही अनुष्ठान करना चाहिये। इस क्रियायोग की फिर क्या आवश्यकता है?

उ०—हे सौम्य! इनकी स्थूलता ध्यान से मिटानी चाहिये अर्थात् क्रियायोग से।क्लेशों को कमजोर कर ध्यान से सूक्ष्म कर फिर समाधि द्वारा निर्बीज कर देना चाहिये। हे सौम्य! क्रियायोग विना समाधि की योग्यता चित्त में नहीं आती। इसलिये क्रिया योग से ही क्लेशों को कमजोर कर फिर क्रम से निर्बीज समाधि से बिलकुल नाश कर देना उचित है।

सू०—क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेद-नीयः ॥१२॥

२—ई दुःख रे' जावा शूँ हीं अठारा, ने वठारा कर्म भेळा व्हे'है।

४—अविद्या आदि क्लेश रे'जाय, तो कर्मां री वासना भी रे'जाय। क्यूँके अविद्या हीज सब अनर्थ री बीज है, ने अणीरा अस्मितादि ने प्रसुप्तादि अनेक भेद है। अणी वास्ते कियो के अविद्या री तो नाम निशाण हीज नी राखणो, ने अविद्या ने जाणो, ने विद्या व्हो'। क्यूँके दोई तो साथे रे' हीं नी शके। पण जाणणो हीं नी, ने सूधी बात है, जदी तो मनख-शरीर री लाभ हीं कइ व्हियो, अणी ने नी जाणवा शूँ वासना रे'वे, ने वा अणी जन्म में वा दूसरा जन्म में भोगणी हीज पड़े। क्यूँ के बीजरा भूँगा आज फूटो वा काल, पण फूट्याँ विना तो नी'ज रे'वे,। अणी शूँ अविद्या जाणणो।

प्र०—हे दयालो! इनको निर्बीज (बिलकुल नाश) न करें तो क्या हानि है। कमजोर क्लेश तो दुःख देते ही नहीं?

उ०—हे सौम्य! चाहे जिस हालत में रहे तो भी कर्मों के संचय का कारण क्लेश है ही और कर्मों का संचय (समूह) होगा तो उसे इस जन्म में वा अन्य जन्म में अनुभव करना ही पड़ेगा।

सू०—सतिमूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः ॥१३॥

२—कर्म व्हे' जशी ही जूण, ऊमर, ने भोग मिले है।

४—अविद्या चावे जणी दशा में रे'वेगा, तो भी वणी रो फळ, जाति, आयु, ने भोग व्हियाँ विना नी रे'वे। एक नामीक अविद्या विपरीत विचार, ने नी ओळखवा शूँ यूँ तरे' तरे' री जाताँ, आयुप, ने भोग भोगणा पड़े। अणी वास्ते जणी वात रो सूधो वात रो, प्रत्यक्ष वात रो, आप्ताँ (बड़ा आदमी) री वात रो सहज ज्ञान प्राप्त कर लेगो, के जो वास्तव में है हीज, ने सदा रे वास्ते जगी शूँ सब दुःखाँ शूँ छूटकारो व्हे' अश्यो क्यूँनी व्हेणो चावे। यूँ तो या तो व्ही' व्हेयाई है हीज यो भाव है।

---

(५) प्र०—*हे भगवन्! सञ्चय किये हुये कर्म इस जन्म में या पर जन्म में किस प्रकार भोगे जाते हैं।*

उ०—जाति (शरीर) आयु (उम्र) और भोग (विषय भोग) को कहते हैं—अर्थात् कर्मों का मूल क्लेश विद्यमान् होने से कर्म इकट्ठे होते रहते हैं और वे जाति आयु भोग रूप से प्रकट होते हैं।

सू०—ते ह्लादपरितापफलाः पुण्यापुण्य हेतुत्वात् ॥१४॥

२—आछा कर्मां शूँ ई तीन ही सुख रा मिले, ने खोटा शूँ ई'ज दु:ख रा मिले है।

४—वी जाति, आयु ने भोग के'क तो सुख रा व्हे' ने के'क दु:ख रा व्हे'। ई तीन ही पुण्य रा कारण शूँ व्हे'तो सुख देवावाळा व्हे'जाय, ने पाप रा कारण शूँ व्हे'तो ई'ज दु:ख रा कारण व्हे'जाय अर्थात् पुण्य शूँ सुख, सुख री जाति, आयु, ने भोग मिले। ने पाप शूँ दु:ख री जाति, आयु ने भोग मिले। अगी में रेंट री घेड़ाँ ज्यूँ सुख शूँ दुःख, ने दुख शूँ सुख फिरता ही रे'वे है। यूँ जतरे अविद्या रो मूळ रे' वतरे या लम्पटेर नी मिटे। क्लेश व्हे'जतरे कर्माशय (वासना) व्हे', वासना व्हे'तो भोग व्हे', भोग व्हे' तो सुख दु:ख हीज पुण्य पाप। शूँ व्हे'ता रे'। यूँ शाँकळ री कड़ी (री नाँई बध्या थका है)

(या टीका अठा तक होज मिली है। क्यूँ के बिमारी में लिखाई ही)

---

५ प्र०—हे प्रभो! वे जाति, आयु और भोग सुखदाई होते हैं या दुखदाई।

उ०—वे जाति आयु आदि पुण्य कर्म से हो तो सुख देने वाले और पाप कर्म से हो तो दु:ख देने वाले होते हैं।

सू०—परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः ॥१५॥

२—सबाँ रो नाश है जणी शूँ, मिटवा रा कारण है जणी शूँ, ने अणाँ री याद रे'जाय जणी शूँ, समझणा रे' तो ई सारा ही दुःख हीज है। क्यूँके एक जश्यो रे'वा रो अणाँ रो स्वभाव ही नी है।

---

५ प्र०—तव तो दुःख देने वाले पाप कर्मों का ही त्याग कर देना चाहिये, निर्वीज समाधि से सम्पूर्ण कर्मों का मूल क्लेश (अविद्या) के त्यागने की क्या आवश्यकता है।

उ०—हे सौम्य! वस्तु का एक समान न रहना वाधा (तकलीफ) करना, वसिश पैदा करना, चित्तवृत्ति का वदलते रहना आदि वातें वाहर से सुखों में वनी ही रहने से समझदार के लिये तो वाहरी सब सुख भी दुःख ही है।

नोट—"ये हि संस्पर्शजा भोगाः दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय, न तेषु रमते बुध. ॥१॥" (गीता)

सू०—हेयं दुःखमनागतम् ॥१६॥

२—दुःखाँ ने नी आया देणा चावे।

---

५ प्र०—हे भगवन्! मैंने बड़ी भूल की जो इतने समय तक दुःखों को सुख समझ कर मारा मारा फिरा अब मुझे क्या करना चाहिये?

उ०—हे सौम्य ! दुःख है, इस को जान लिया तो त्याग-करना चाहिये अर्थात् आगे को कभी दुःख होवे ही नहीं ऐसा उपाय करना चाहिये। हे सौम्य ! अब आने वाले ही दुःख रोके जा सकते हैं।

सू०—द्रष्टृदृश्ययोः संयोगो हेयहेतुः ॥१७॥

र—देखे जणी रे, ने दीखे जणी रे मिल जावा शूँ हीज दुःख आवे है।

---

(५) प्र०—हे भगवन् ! इसी का उपाय सब ही करते हैं कि हमें कभी दुःख नहीं होवे, परंतु दुःख किस से होता है, यह न जानने से दुःख मिटने के बजाय बढ़ते ही जाते हैं। इस लिए दुःखों का कारण क्या है अर्थात् दुःख किस से होते हैं सो कृपाकर कहिये।

उ०—द्रष्टा (देखने वाले) का और दृश्य (दीखने वाले) का सयोग ही दुःख का कारण है अर्थात् देखने की वस्तु और दीखने की वस्तु की एकता (संयोग) से ही दुःख होते हैं।

सू०--प्रकाशक्रियास्थितिशीलं भूतेन्द्रियात्मकम् भोगाऽपवर्गार्थं दृश्यम् ॥१८॥

२—देखावणो, बदलणो, ठे'रणो, हीज दीखे ज्यो वाजे है। अणी ने ही दृश्य भी के' है। अणी में ही शरीर इन्द्रियाँ बंधणों, ने छूटणो सारा ही आय गिया।

---

(५) प्र०—हे भगवन्! सो दृश्य (दीखने वाला) किसे कहते हैं यह मुझे पहले समझा दीजिये?

उ०—दृश्य (दीखने की वस्तु) प्रकाश (ज्ञान) क्रिया (चेष्टा) स्थिति (ठहरना) का स्वभाववाला है, यही इन्द्रियाँ और उनके विषयों के आकार से दीखता है। यही दृश्य भोग (बंध) और अपवर्ग (मोक्ष) (भोग मोक्ष भी इसी के अन्तर्गत है) के नाम से भी कहा जाता है। तात्पर्य यह है कि कुल दीखता है सो दृश्य ही है।

सू०—विशेषा विशेषलिंगमात्रालिगानि गुणपर्वाणि ॥१६॥

२—म्होटी चीजाँ, महीं चीजाँ वणी शूँ महीं, ने सब शूँ महीं, ई यो दीखे जणी रा हीज भेद है। अणाँ ने ही विशेष, अविशेष लिंगमात्र, ने अलिंग भी के' है। ई गुण-पर्व भी वाजे है।

---

(५) प्र०—हे भगवन्! इस दृश्य को जरा मुझे और समझा दीजिये?

उ०—हे सौम्य ! दृश्य के मुख्य चार भेद हैं और किये जा सकते है। विशेष स्थूल (पञ्च महाभूत और ग्यारह इन्द्रियें इन्हें ही षोडशक भी कहते हैं अर्थात स्थूल अविशेष पञ्चतन्मात्रा और अहंकार अर्थात् सूक्ष्म) लिंग मात्र सूक्ष्म (महत् तत्व और बुद्धि भी कहाती है) इनका निशान सूचक (बताने वाला) भी सूचक कहलाता है, अलिंग अव्यक्त (जिसका कुछ निशान नहीं) ये ही चौबीस तत्व अव्यक्त दृश्य हैं, जो कुछ दीखता है वह कुल दृश्य है।

सू०—द्रष्टा दृशिमात्रः शुद्धोऽपि प्रत्ययाऽनुपश्यः ॥२०॥

२—हरे'क दीखवा रे साथे देखवो है, पण यो दोखवा शूँ नाम भी नी मिले है। यो केवल देखवो हीज दीखे जो बाजे है। अणी ने हीज द्रष्टा भी के' है।

---

(५) प्र०—अच्छा तो अब द्रष्टा किसे कहना चाहिये सो भी समझा दीजिये ?

उ०—देखना मात्र अर्थात् सीर्फ देखना ही द्रष्टा कहाता है इसी से वह सदा शुद्ध होने पर भी बुद्धि (विचार) के साथ मिला होवे ज्यो भान होता है, अर्थात् केवल चैतन्य को द्रष्टा कहते हैं वह दीखता नहीं है।

सू०—तदर्थमेव दृश्यस्यात्मा ॥२१॥

२—दीखे ज्यो देखे जणी शूँ ही सावित है।

५ प्र०—हे भगवन्! द्रष्टा दीखता ही नहीं तो उसके होने की क्या सिबूत है?

उ०—हे वत्स! द्रष्टा के ही लिये दृश्य की स्थिति है। जहां दृश्य है, वहीं द्रष्टा है। विना द्रष्टा के दृश्य की स्थिति ही नहीं है। हे वत्स! यह दृश्य दीखता है, यही उसकी सिबूत है। द्रष्टा के विना यह दृश्य ठहर नहीं सकता।

सू०—कृतार्थंप्रतिनष्टमप्यनष्टं तदन्यसा-धारणत्वात् ॥२२॥

२—यूँ ठीक समझले' वणी रे तो याँ दोयाँ रो मिलणो है ही नी, पण अण जाण रे तो मिलावट है हीज।

५ प्र०—हे भगवन्! इस विचार से तो द्रष्टा दृश्य कहना ही नहीं बनता फिर यह शास्त्र ही किसके वास्ते है?

उ०—जिसकी इस प्रकार समझ होगई है उसके लिये द्रष्टा दृश्य कहने की कोई आवश्यकता नहीं रहती, परन्तु जिसके यह बात समझ में नहीं आई उसके लिये द्रष्टा दृश्य कहना ही पड़ता है।

सू०—स्वस्वामिशक्त्योः स्वरूपोपलब्धिहेतुः संयोगः ॥२३॥

२—देखे जणी ने जाणणो वा दीखे जणी ने जाणणो ही यॉंरी मिलावट वाजे है। अणी ने ही दृष्टा दृश्य री सयोग भी के' है।

---

(५) प्र०—दृष्टा और दृश्य को (जड चैतन्य को) आप की दया से मैंने समझ लिया। अब कृपा कर यह बताइये कि सयोग किसे कहते हैं—जो कि सम्पूर्ण दुख का कारण आपने कहा था।

उ०—हे सौम्य ! यही संयोग कहाता है कि मैंने दृष्टा और दृश्य को (जड चैतन्य को) समझ लिया। क्योंकि दृष्टा के देखने की वस्तु ही दृश्य है। इन दृष्टा दृश्य दोनो के सिवाय इन को समझाने वाला कौन हो सकता है (कोई नहीं है) तो भी इनको समझना ही कि यह दृश्य है और यह दृष्टा है यही संयोग कहाता है।

सू०—तस्य हेतुरविद्या ॥२४॥

२—या मिलावट मूर्खता शूँ हीज है।

---

(५) प्र०—जब दो (जड चेतन वा प्रकृति पुरुष अथवा दृष्टा-दृश्य) के सिवाय तीसरा कोई हो ही नही सकता

जो कि इन दोनों को जाने तब यह तीसरा संयोग कहाँ से आगया अर्थात् संयोग का कारण क्या है, संयोग किससे होता है। यह कहिये।

उ०—इस सयोग का कारण यही (विपरीत भावना विपर्यय वृत्ति) अविद्या है।

सू०—तदभावात् संयोगाऽभावो हानं तद्दृशे कैवल्यम् ॥२५॥

२—मूर्खता मिटवा शूँ या मिलावट मिटजाय, ने अणी रो मिटवो ही देखे, जणी रो निराळश व्हे'जाणो के'है। अणी रो मिटणो "हान" याजे है, ने निखाळशपण ने कैवल्य के' है।

---

५ प्र०—तो यह संयोग कैसे मिटता है यह आज्ञा कीजिये ?

उ०—इस अविद्या (विपरीत ज्ञान) के ज्ञान के मिटने से सयोग (जड़ चैतन द्रष्टा दृश्य का मिलान) मिट जाता है और यही (इस मिलान का मिटना ही) द्रष्टा का कैवल्य (मोक्ष स्वरूपावस्थान केवल द्रष्टा मात्र रह जाना दृश्य से अलग हो जाना) है।

नोट—"तद्विद्याद् ःख संयोगवियोग योगसंज्ञितम् ।
स निश्चयेन योक्तव्यो योगो निर्विण्ण चेतसा ॥" (गीताजी)

—०৪৪०—

सू०—विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायः ॥२६॥

२—साँची समझ रो 'अडग व्हे'जाणो ही अणी रो उपाय है। अणी ने 'ही अविसवा विवेकख्याति के'है।

---

५ प्र०—अविद्या से ही, सम्पूर्ण दुःखों की परंपरा उत्पन्न होती है और इस अविद्या का मिटाना ही मोक्ष वा योग है। तब इस अविद्या के मिटाने का क्या उपाय है सो कृपा कर आज्ञा करें।

उ०—विवेकख्याति (निर्मल ज्ञान) ही इस अविद्या के मिटाने का मुख्य उपाय है अर्थात् दृढ़ निर्मल ज्ञान से (विद्या से) ही अविद्या मिटती है।

नोट—"ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः।
'तेपामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम् ॥"
गीताजी

सू०—तस्य सप्तधा प्रान्त-भूमिः प्रज्ञा ॥२७॥

२—अणी अडग साँची समझ में सात तरे'रा विचार व्हे'है। वणाँ शूँ ऊँचा दूजा विचार व्हे'ही नी शके,—(१) दुःखाँ ने जाण लीधा, (२) दुःखाँ रो कारण मिटगयो, (३) छूटणो भी देख लीधो, (४) साँची समझ भी आयगी।, (५) अबे बँधणो ने छूटणो मिटगयो, (६) अबे तो मन से'ती सब ही हट मिटगया, (७) बस अबे तो है ज्यो ही कैवल्य है। ई सात ही निश्चय

वणी रा व्हे'जाय है। अणी ने ही सांची समझ ने परमपद के' है। यो ही अखंड महासुख वाजे है, ने योही योग है।

---

५ प्र०—इस विवेक ख्याति नाम के निर्मल ज्ञान का होना कैसे मालूम होता है।

उ०—इस निर्मल विवेक ख्याति के सात निशान हैं अर्थात् अविचल दृढ़भाव से उसे क्रम क्रम से ये सात निश्चय होते जाते हैं अर्थात् जड़ चैतन के पृथक् होते ही ये सात बातें उसके चित्त में दृढ़तापूर्वक यथाक्रम आती है इसी को विवेक ख्याति कहते हैं (१) अब कुछ भी समझना नहीं रहा। (२) अब कुछ भी छोड़ना बाकी नहीं रहा। (३) पाने के लिये अब कुछ भी बाकी नहीं रहा। (४) करने के लिये अब कुछ भी नहीं रहा। इन चार हालतों के सिवाय तीन हालतें और ऊँचे दर्जे की आती हैं, उन्हें चित्तविमुक्ति (चित्त का छूटना) कहते हैं और इन चार को प्रज्ञा विमुक्ति (अर्थात् कुछ यत्न करने से बुद्धि का छूटना) कहते हैं और ये तीन प्रयत्न ही बुद्धि का छूटना कहाती है वे तीन ये हैं—(५) बुद्धि से अब कुछ प्रयोजन नहीं रहा। (६) अब बुद्धि आगे से आगे भागती जाती है, जैसे पर्वत से लुढकता पत्थर नीचे ही नीचे चला जाता है, (७) अब कदापि इसका उत्थान (उठना) हो ही नहीं सकता अर्थात् यह तो बिलकुल इसके (बंध के) योग्य है ही नहीं।

(नोट) "यदा ते मोह कलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति।
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च॥

तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठा स्तत्परायणाः।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ॥
श्रुति विप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला ।
समाधीवचलाबुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि ॥
य लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ।
यस्मिंस्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥"

श्रीगीताजी

(नोट) (दुःख[१]-दुःखहेतु[२]--मोक्ष[३]-मोक्षहेतु[४]--बुद्धि की कृतार्थता[५] बुद्धिलय[६]-अपुनरुत्पत्ति[७] इस विवेक की ख्याति हैं)।

सूत्र—योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्ति-राविवेक ख्यातेः ॥२८॥

२—समझरा पगल्या चढ़ता जाय, ज्यूँ ज्यूँ मूरखता छूटती जाय, ने समझ आवती जाय, ने यूँ ठेट सांची समझ तक पूगाय-जाय है।

---

(५) प्र०—इस प्रकार की विवेक ख्याति किस उपाय से प्राप्त होती है ?

उ०—हे सौम्य ! योग के अंगों को श्रद्धापूर्वक साधने से चित्त शुद्ध होने लगता है। यह चित्त क्रम से इतना शुद्ध होजाता है कि जिससे विवेक ख्याति उत्पन्न

होजाती है। अर्थात् चित्त शुद्ध हुये विना विवेक ख्याति नहीं होती और योग के अगों के साधन विना चित्त शुद्ध नहीं होता अर्थात् योग के अंगों को क्रम से साधने से क्रम से चित्त इतना शुद्ध होजाता है कि विवेक ख्याति तक प्राप्त होजाती है।

सू०—यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि ।.२६ ॥

टी०—वा'रलो सुधारो, मायलो सुधारो, शरीर रो सुधारो, श्वास रो सुधारो, इन्द्रियाँ रो सुधारो, मन रो सुधारो, म्हूंपणा रो सुधारो, ने समझ रो सुधारो, साँची समझ रा इ आठ ही पगत्या है। अणाँ ने ही यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, ने समाधि के'है, ने अणाँ आठ ही पगत्या ने योग रा अंग भी के' है।

---

(५) प्र०—हे भगवन्! योग तो आप ने प्रथम आज्ञा किया था ही, अब योग के अंग क्या हैं सो कृपया पृथक् पृथक् आज्ञा कीजिये कि जिनको साधन करने से विवेक ख्याति रूपी निर्मल ज्ञान प्राप्त होता है अर्थात् स्वरूपावस्थान रूपी योग प्राप्त हो जाता है।

उ०—(१) यम, (२) नियम, (३) आसन, (४) प्राणायाम (५) प्रत्याहार, (६) धारणा, (७) ध्यान, और (८)

समाधि, ये आठ ही योग के अंग हैं। जितने प्रकार के योग हैं वे सब इन्हीं के अन्तर्गत आ जाते हैं।

(नोट) यम नियम से लेकर विवेक ख्याति पर्यन्त क्रम से ज्ञान की दीप्ति होती है।

सू० —अहिंसा सत्यमऽस्तेय ब्रह्मचर्याऽपरिग्रहा यमाः ॥३०॥

२—दुखावणो, झूठ, चोरी, वीर्य री खराबी, ने भेळो करणो, अणाँ पाँच वाताँ ने ही हिंसा, असत्य, स्तेय, अब्रह्मचर्य ने परिग्रह के' है। अणाँ रो छोडणो ही वा'रलो सुधारो है, अणी ने यम के' है।

---

(५) प्र०—हे भगवन्! प्रथम अंग जो आपने योग का यम कहा, सो यम किसे कहते हैं, आज्ञा कीजिये। क्योंकि पहली सीढी से ही आगे बढ सकता है।

उ०—अहिंसा (दुख नहीं देना) सत्य (साँच बोलना) अस्तेय (चोरी नहीं करना) ब्रह्मचर्य (वीर्य की रक्षा करना) अपरिग्रह (संग्रह नहीं करना) इन पाचों को यम (रोक) कहते हैं।

(नोट) अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दयाभूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥१॥
(गीताजी)

सू०—जातिदेशकाल समयाऽनवच्छिन्नासार्व-भौमामहाव्रतम् ॥३१॥

२—जातरा, जगा'रा, वगतरा, ने नियम रा विचार शूँ भी ई काम नी करणा, पण विलकुल अणाँ ने छोड़ देणा ही म्होटी तपस्या है, अगी ने ही महाव्रत भी के'है।

---

(५) प्र०—हे भगवन्! ये पांचों यम जो आपने कहे, वे तो मनुष्य मात्र को ही साधने चाहिये और किसी-न-किसी अंश में सब साधते ही हैं फिर इनमें क्या विशेषता होने से ये विवेक ख्याति (विवेक ज्ञान) के शीघ्र उपयोगी होते हैं?

उ०—इनमें जाति (जैसे गाय या मनुष्य) देश (जैसे तीर्थ वा मन्दिर) काल (जैसे रविवार वा एकादशी), समय (जैसे भागते हुए या विश्वास देकर) की क़ैद (विचार) न रखकर पालने से ही ये महाव्रत कहाते हैं और इनकी क़ैद में आये हुए ही ये अणुव्रत के नाम से कहे जाते हैं अर्थात् किसी के भी लिये कहीं भी, कभी भी, किसी तरह भी इन यमों को कुछ भी नहीं बिगड़ने देने से ये महाव्रत कहाते हैं और ये महाव्रत ही विवेक ख्याति के शीघ्र उपयोगी होते हैं।

सू०—शौचसंतोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणि-धानानि नियमाः ॥३२॥

२—पवित्र रेणो, संतोष, रमणो, वारंवार भगवान् ने याद करणो, ने वणी रो आशरो राखणो, अणाँ ने शौच, संतोष, तप स्वाध्याय, ने ईश्वर प्रणिधान केहै। अणी मायला सुधारा ने हीज नियम भी के है।

(५) प्र०—प्रथम अग यम को आप ने आज्ञा कर दिया अब योग के दूसरे अंग नियम को मुझे समझाइये ?

उ०—शौच (पवित्रता=मन की और शरीर की सफाई) सतोप, तप (सहन करना) स्वाध्याय (सत् शास्त्रों का विचार वा जप) ईश्वर प्रणिधान (ईश्वर से सर्व-शक्ति समझना) ये नियम कहे जाते हैं।

सू०—वितर्कबाधने पतिपत्तभावनम् ॥३३॥

२—अणाँ वाताँ ने छोड़वा रो विचार व्हे' तो पाछी गाढी पकड़वा रो विचार करणो।

(५) प्र०—हे भगवन् ! जो इन नियमादि से उलटे विचार उठ कर इनको छुड़ा कर अपनी तरफ खींचने लगे तो क्या करना चाहिये (जैसे मैं इसको तो अवश्य ही मारूँगा)

ऐसे यम नियमादि को छुड़ाने वाले विचार बढ़ जाय तो उसका, क्या उपाय है ?

उ०—हे सौम्य ! यों यम नियमादि को छुड़ाने वाले विचार उठें तो उनके विरुद्ध यम नियम को दृढ़ करने वाले विचार करने चाहिये ।

सू०-वितर्काहिंसादयः कृतकारिताऽनुमोदिता लोभक्रोधमोहपूर्वका मृदुमध्याधिमात्रा दुःखाऽज्ञानाऽनंतफला इति प्रतिपक्ष-भावनम् ॥३४॥

२—छोड़वा शूँ, छोडावा शूँ, छोड़वो ठीक समझवा शूँ, लोभ, क्रोध, ने आळस शूँ, थोड़ी, घणी, ने बिलकुल, ई वाताँ छूट जाय है, ने अणाँ रे छूट जावा शूँ अपार दुःख ने अपार मूरखता भुगतणी पड़ेगा यूँ विचारवा शूँ ई वाताँ पाछी गाढी पकड़ाय जाय है ।

---

(५) प्र०—यम नियमादि को दृढ़ (स्थिर) करने के विचार कैसे करें ?

उ०—यम नियमादि के त्यागने का विचार होते ही उसके विरुद्ध यम नियमादि को दृढ़ करने का विचार यों करें ·

कि हिंसा आदि करना, (जोकि यम नियमादि का त्यागना है) बहुत बुरा है। क्योंकि इसका फल अपार दुःख और अज्ञान है। इन यम नियमादि का स्वयं त्याग तो कदापि करना ही नहीं चाहिये, परन्तु किसी से इसका त्याग कराना भी बहुत बुरा है, त्याग कराना तो क्या किसी ने त्याग कर दिया हो, उसे अच्छा समझना वा उसकी प्रशंसा करना भी महा अज्ञान और अनन्त दुःख देता है। क्योंकि ऐसे सत्कर्म का त्याग लोभ क्रोध या मूर्खता से ही किया जाता है। और जब प्रत्यक्ष ही मूर्खता से किया हुआ काम, दुःख देता है, तब इतनी बड़ी मूर्खता का अवश्य ही बुरा नतीजा होगा। इन यमादि योग अंगों का त्याग मृदु मध्य और अधिमात्र तीन प्रकार का है। अर्थात् थोड़ा, मध्य, (कुछ) और बिलकुल। सो बिलकुल तो क्या, परन्तु थोड़ा भी इनका त्याग महा अनर्थ का मूल है। इस प्रकार की भावना (विचार) करे तो योग के अग स्थिर (दृढ़ प्रतिष्ठित) हो जाते हैं।

सू०—अहिंसा, प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैर-त्यागः ॥३५॥

२—जणी रे यूँ दुखावणो छूट जाय, घणी रे मूँड़ा आगे भी कोई कणी ने ही नी दुखाय शके।

---

(५) प्र०—हे भगवन्! योग के अगों में प्रथम आपने यम कहा

था और वह पांच तरह का कहा था। उस में प्रथम अहिंसा बतलाई थी सो इस प्रकार अहिंसा प्रतिष्ठित (दृढ़) होजाने से क्या होता है।

उ०—जब इस प्रकार अहिंसा दृढ (स्थिर) हो जाती है, तब उस योगी के पास (सामने) कोई भी किसी का दुःख नहीं दे सक्ता।

सू०-सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाऽऽश्रयत्वम् ॥३६।

२—यूँ ही झूठ छूट जाय, तो वो के'वे ज्यो व्हे'जाय।

---

(५) प्र०—जब सत्य की दृढ़ता हो जाती है, तो क्या होता है ?

उ०—सत्य की दृढ़ता हो जाने से उसका वचन निष्फल नहीं जाता, वह कहता है, वही हो जाता है।

—:—:—

सू०—अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम् ॥३७॥

२—यूँ चोरी छूट जाय, तो वणी रे सब आछी आछी चीजाँ हाजिर व्हे' जाय।

---

(५) प्र०—अस्तेय-इमानदारी (चोरी नहीं करना) की प्रतिष्ठा (स्थिरता) होने पर क्या होता है ?

उ०—अस्तेय दृढ हो जाने से सब उत्तम उत्तम वस्तु उसके पास आ जाती है।

सू०–ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः ॥३८॥

र—यूँ वीर्य री रुखाळी छूट जावा शूँ बळ वधे।

---

(४) प्र०—ब्रह्मचर्य (वीर्य की रक्षा) की दृढता से क्या होता है ?

उ०—ब्रह्मचर्य की दृढता से शारीरिक और मानसिक बल बढ जाता है।

सू०–अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथं तत्सम्बोधः ॥३६॥

र—यूँ ही भेळो करणो छूट जाय, तो जन्म क्यूँ व्हे' आगी री खबर पड़ जाय।

---

(५) प्र०—अपरिग्रह दृढ होने से क्या होता है ?

उ०—अपरिग्रह (संग्रह न रखना) की स्थिरता से योगी को अपने तीनो जन्मों (पहले क्या था, क्यों था, अब क्या हूँ, क्यों हूँ, आगे क्या होऊँगा, क्यो होऊँगा) की मालूम होती है।

सू०—शौचात्स्वाङ्गजुगुप्सा परैरसंसर्गः ॥४०॥

२—यूँ पवित्रता सध जावा शूँ आपणा शरीर री शूग आवा लाग जाय, ने दूजाँ रा शरीर पे भी मोह नी रे'।

(५) प्र०—आप की कृपा से योग के प्रथम अग यम के दृढ़ होने के लक्षण मालूम हुए, अब दूसरा अग जो आपने नियम कहा था उस मे प्रथम शौच (सफाई) कहा था। इस शौच की दृढ़ता से क्या होता है सो कहिये।

उ०—पवित्रता रखने से अपने शरीर की ममता (अभिमान) मिट कर दूसरे शरीरों से भी अलग रहता है।

सू०—सत्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्र्येन्द्रियजयात्म-दर्शनयोग्यत्वानि च ॥४१॥

२—यूँ हीं मायली पवित्रता सधवा शूँ मन निर्मळ, सुहावणो ने थिर व्हे' जाय, ने इन्द्रियाँ आधीन व्हे' ने मन देखवावाळा रो विचार करवालायक व्हे'।

(५) प्र०—हे भगवन्! शरीर की पवित्रता से ये होता है तो भीतरी, मानसिक शुद्धता (शौच) स्थिर होने से क्या होता है?

उ० भीतरी शौच (पवित्रता) के दृढ़ होने से सतोगुण

बढ़ता है, स्वाभाविक ही प्रसन्नता होती है, चित्त एकाग्र होता है, इन्द्रियें आधीन हो जाती हैं, और आत्मा के साक्षात्कार की योग्यता आ जाती है।

—:*:—

सू०—सन्तोषादनुत्तमसुखलाभः ॥४२॥

२—यूँ सन्तोष सध जाय तो घणो सुख व्हे।

(५) प्र०—सन्तोष के दृढ़ होने को क्या पहचान है।

उ०—सन्तोष की दृढ़ता होने से ऐसा सुख मिलता है कि सम्पूर्ण संसार का सब वैभव पाकर भी वैसा सुख नहीं हो सकता। (१)

सू०—कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात् तपसः ॥४३॥

२—यूँ तपस्या सध जाय तो मेल कटने शरीर, ने इन्द्रियाँ सुधर जाय।

(५) प्र० तप की दृढ़ता से क्या होता है ?

उ०• तप की दृढ़ता से विकार मिट जाते हैं। इसलिये वह अपनी इच्छानुसार शरीर को बना सकता है और उसकी इन्द्रियों की रोक टोक मिट जाती है।

सू०—स्वाध्यायादिष्टदेवता संप्रयोगः ॥४४॥

२—यूँ वारवार याद राखवा शूँ इष्टदेव मिले।

(५) प्र० आपने स्वाध्याय कहा था, उस से क्या होता है ?

उ० स्वाध्याय [जप वा स शास्त्र] की दृढता होने से हमारा इष्टदेव (जिसे हम चाहें वह देवता) मिल जाता है।

सू०—समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात् ॥४५॥

२—यूँ भगवान् रो आशरो लेवा शूँ अखंड सुख व्हे'।

(५) प्र० पाँचवाँ नियम ईश्वर प्रणिधान (ईश्वर की ही सब शक्ति समझ कर उसी में सब क्रियाओं का अर्पण) है, उसकी दृढता से क्या होता है ?

उ० ईश्वरप्रणिधान से समाधि की सिद्धि होती है।

सू०—स्थिरसुखमासनम् ॥४६॥

२—विना अवखाई नरी देर तक जणी तरे' शूँ रेंगी आवे यणी ने शरीर रो सुधारो वे है, अणी ने ही आशण भी के' है।

(५) प्र० हे भगवन्! योग के दोनों अंग यम नियम आपने

आज्ञा कर दिये और उन की दृढता की पहिचान भी आपने एक एक करके समझा दी। अब योग का तीसरा अंग जो आप ने आसन कहा था, वह आज्ञा कीजिये कि आसन किसे कहना चाहिये।

उ० जिस तरह बहुत समय तक बैठे रह सकने पर भी तकलीफ मालूम नहीं हो वही आसन कहाता है।

सू०--प्रयत्नशैथिल्याऽनन्तसमापत्तिभ्याम् ॥४७॥

२—उपाय छूट अपार में मन लागवा-सूँ यूँ देवाय है।

(४) प्र० बहुत समय तक एक तरह बैठे रहने से अवश्य ही तकलीफ मालूम होती है, किस उपाय से बिना हिले डुले एक ही प्रकार स बहुत देर तक बैठ सकते हैं सो आज्ञाकीजिये ?

उ० अहकार पूर्वक कोशीश को कम कर देने से और अनत शक्ति मे ही अपनी, शक्ति मानने से आसन, सुख सहित स्थिर हो जाता है, अर्थात् यत्न त्याग करने से और अपनी शक्ति अनन्त शक्ति में समझ लेने से आसन सिद्ध हो जाता है।

सू०—ततोद्वंद्वानभिघातः ॥४८॥

२—अणी शूँ गर्मी सर्दी नी व्यापे है।

(५) प्र० आसन सिद्ध (स्थिर प्रतिष्ठित) होने से क्या होता है ?

उ० आसन की प्रतिष्ठा (सिद्धि) हो जाने से गर्मी सर्दी आदि की बाधा नहीं होती।

सू०--तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गति विच्छेदः प्राणायामः ॥४६॥

२—यूँ शरीर रो सुधारो साध्याँ केड़े श्वास री चाल ठे'र जाय। अणी ने श्वास रो सुधारो वा प्राणायाम के' है।

(५) प्र० आप ने चतुर्थ अंग योग का प्राणायाम कहा था सो प्राणायाम किसे कहते हैं ?

उ० आसन के दृढ़ हो जाने पर श्वास का आना जाना रुक जाना ही प्राणायाम है।

सू०—बाह्याऽऽभ्यंतरस्तंभवृत्तिर्देशकाल संख्याभिःपरिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः ॥५०॥

२—स्वास रो बा'रणे निकळणो, मॉयने आवणो, ने ठे'रणो, व्हे'तो रे' है, अणी पे जगा' शूँ, वगत शूँ, ने गणती शूँ ओशान राखे तो यो फोरो पड़ ने वत्तो ठे'रवा लाग जाय।

---

(५) प्र० स्वास का भीतर रुकना प्राणायाम है, या बाहर रुकना प्राणायाम है, अथवा रुकना ही प्राणायाम है, इसका भेद समझाइये ?

उ० हे सौम्य ! स्वास का रुकना ही प्राणायाम है और, उसके चार भेद हैं। बाहर रुकना, भीतर रुकना, बाहर भीतर दोनों ही रुकना (अर्थात् धनञ्जय प्राण को पकड़ने से दोनों का रुक जाना) इसी को रेचक, कुंभक (बाहर ठहरना) पूरक कुंभक (भीतर ठहरना) स्तंभ कुंभक (धनञ्जय को पकड़ने से दोनों का रुकना) कहते हैं और यह ज्यों ज्यों अधिक रुकता जाता है, त्यों त्यों दीर्घ सूक्ष्म (मुख्य प्राण) से मिलता जाता है इसकी अधिक रुकने की और कम रुकने की पहिचान नासिका के बाहर और भीतर जाने की कमी से वा अधिकता से अथवा गिनती से कि इतनी गिनती तक रुका अथवा इतनी देर में इतने स्वास सदा आते हैं इस में इतने ज्यादा कम हुए इस प्रकार से की जाती है।

नोट—"अपाने जुव्हति प्राणं प्राणेऽपानं तथाऽपरे
प्राणाऽपानगती रुद्धा प्राणायाम परायणाः ॥"
श्रीगीता जी

सू०-बाह्याऽऽभ्यन्तरविषयाऽऽक्षेपी चतुर्थः॥५१॥

२—अणाँ तीन ही वातों ने छोड़ने केवल ठे'रणो हीज श्वास रो सब शूँ वत्तो सुधारो है। अणी ने हीज चौथे सुधार भी के' है। ईं ने हीज केवल कुंभक भी के'वे है।

---

(५) प्र० हे भगवन्! आप ने तीन प्रकार प्राण के रुकने के उपाय कहे। इन सब से अधिक प्राणायाम कौनसा है कि जिस के प्राप्त हुए बाद प्राणायाम करने की आवश्यकता ही न रहे।

उ० जो विना ही पकड़ छोड़ के स्वतः ही प्राण ठहर जाय तब समझ लेना चाहिये कि अब प्राणायाम सिद्ध हो गया। यही चतुर्थ प्राणायाम है। इसे ही केवल कुम्भक कहते हैं।

नोट—"प्राणाऽपानौ समौ कृत्वा, नासाभ्यन्तर चारिणौ"
(गीताजी)

"दृष्टि.स्थिरा यस्य विनैव लक्ष्य,
वायुः स्थिरो यस्य विनावरोधम्।
मन.स्थिरो यस्य विनावलम्बम्,
स एव योगी स गुरुः स पूज्य.॥

सू०—ततः क्षीयते प्रकाशाऽऽवरणम् ॥५२॥

र—श्रणी शूँ मूर्खता घटे है।

---

(५) प्र०—इन प्राणायामों से क्या होता है?

उ०—तमोगुण, रजोगुण, आवरण कम होकर सतोगुण (ज्ञान) बढ़ने लगता है।

सू०—धारणासु च योग्यता मनसः ॥५३॥

र—श्रणी शूँ मन स्थिरता ने धारणा करवा लायक भी व्हे'जाय है, अर्थात् मन रा सुधारा (धारणा) रे लायक भी मन व्हे' जाय है।

---

(५) प्र०—चौथे प्राणायाम से क्या होता है। सतोगुण बढ़ने से क्या होता है?

(नोट) यथाक्रम प्रत्याहार तो कैमुतिक न्याय से भी होता है।

उ०—मन निर्मल होकर धारणा के योग्य (एक जगह ठहरने के योग्य) हो जाता है।

सू०—स्वविषयाऽसंप्रयोगेचित्तस्य स्वरूपाऽनु-कार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः ॥५४॥

२—सुख दुःखाँ में भी इन्द्रियाँ मन रे आधीन रे'वा लाग जाय। अणी ने इन्द्रियाँ रो सुधारो अथवा प्रत्याहार भी के'है। *यो इन्द्रियाँ ने बा'रणे भटकणो छोड़ाय, मन रे साथ राखवा शूँ* भी व्हे'है।

---

(५) प्र०—*अब कृपाकर योग का पाँचवाँ अंग जो आपने प्रत्या-*हार कहा था, वह कहिये ?

उ०—इन्द्रियों का अपने अपने विषय (सुनना आदि) छोड़ कर चित्त के जैसा ही हो जाना (जिधर चित्त ठहरे उधर ठहर जाना) ही प्रत्याहार कहाता है।

(नोट) "यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वतः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥"

गीताजी

सू०—ततः परमावश्यतेन्द्रियाणाम् ॥५५॥

२—अणी शूँ इन्द्रियाँ पूरी आधीन व्हे'जाय है।

---

(५) प्र०—प्रत्याहार सिद्ध होने से क्या होता है ?

उ०—इससे इन्द्रिये अपनी स्वतन्त्रता छोड़, चित्त के परम (बिलकुल) आधीन हो जाती है, नहीं तो प्रत्याहार बिना ये चित्त को अपनी तरफ खींच लेतीं है।

(नोट) "तस्मात्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम्॥
इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवांभसि॥
यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः॥"

श्रीगीताजी

इति योगशास्त्रे द्वितीय पादे पातञ्जल प्रतिपादिका लघु टीका समाप्ता।

द्वितीयपाद का उपसंहार

हे भगवन् ! आपने प्रथम पाद मे ऊँचे अभ्यास और वैराग्य-वान् के योग की प्राप्ति कही। इस दूसरे पाद में कमजोर साधन के लिये (कम वैराग्य और अच्छे अभ्यासी के लिये) योग कहा। इस मे आप ने तपश्चादिक अभ्यास सूत्र १ में योग कह कर इन से क्लेशों के कमजोर करने की कही। सूत्र २ से ९ तक फिर पाँचों क्लेश बताकर इन सूक्ष्म क्लेशों के मिटाने की और सूत्र १० में स्थूल क्लेशों के मिटाने को विधि कही। फिर क्लेशों के न मिटने से सूत्र ११ में कर्मों का सचय होना कह कर उनका प्रकट होना कह कर सूत्र १२ मे सुख दुःख देना बताया और क्लेशों के बने रहते सूत्र १३-१४ में जो सुख हैं, वे भी दुःख ही हैं, यह समझा कर सूत्र १५ में मिटाने के लायक दुःख बता कर दुःखों का कारण दृष्टा और दृश्य का सूत्र १६ में संयोग कहा। फिर सूत्र १७ से २१ तक दृश्य क्या है और दृष्टा क्या है कह कर यह कहा कि ज्ञानी का बंधन छूटता है, सूत्र २२ में अज्ञानी का नहीं। फिर सूत्र २३ में दुःख का कारण सयोग क्या है सो बताया। फिर सूत्र २४ में इस सयोग का भी कारण अविद्या बता कर सूत्र २५ में इस अविद्या का मिटना ही मोक्ष है यह कहा। फिर सूत्र २६ में इस अविद्या के मिटाने का उपाय विवेकख्याति कह कर उसके सात भेद कहे। फिर सूत्र २७ मे विवेकख्याति का भी उपाय अष्टाङ्ग योग है, यह कहा। अष्टाङ्ग योग में भी सूत्र २८-२९ में प्रथम यम को कहा, फिर उसे सर्वत्र पालनीय महाव्रत सूत्र ३०-३१ में

बता कर नियम (दूसरा अंग) कहा। फिर सूत्र ३२-३३ मे इनको छोड़ने की इच्छा हो तो उसके भी त्याग का उपाय, सूत्र ३४ में उस इच्छा का भी त्याग करना कहा। फिर सूत्र ३५ से ३९ तक पाँचों यमों के यथार्थ सिद्ध होने का पृथक् पृथक् फल कहा। इसके उपरान्त सूत्र ४० मे ४५ तक पाँचों नियमो के सिद्ध होने से जो फल होते हैं, वे अलग अलग कहे। फिर सूत्र ४६ आसन कह कर उसकी सिद्धि का उपाय बता कर सूत्र ४७-४८ में उसकी सिद्धि का फल कहा। फिर सूत्र ४९, ५० और ५१ में प्राणायाम की सिद्धि के फल कहे। फिर सूत्र ५४, ५५ मे योग का पांचवाँ अंग प्रत्याहार कह कर उसका फल बता कर इस द्वितीय पाद को समाप्त किया। इसका मतलब मेरी समझ में यह आया कि अभ्यास तो तीव्र हो और वैराग्य मद हो उसके लिये यह दूसरा साधन (अभ्यास) पाद आपने कहा, इस में प्रथम सिद्धान्त को बताया है कि मुख्य समाधि की योग्यता ही साधन का फल है। फिर अष्टाङ्ग योग जो कि एक से एक का सीढ़ी की तरह सिलसिला बंधा हुआ है अर्थात् एक की सिद्धि और दूसरे अंग का प्रारभ है, यों बताया है और इस में भी आपने दृष्टा दृश्य का खुलासा कर के योग व तत्व को करामलकवत् कर दिया है। मेरी समझ में इस साधन पाद के किसी भी साधन के साधने की आवश्यकता ही न पड़े। यदि कोई इनको साधने की दृढ़ इच्छा ही करले तो यह सब ही साधन बात की बात में सध जाय।

॥ इति ॥

पाताञ्जल योग दर्शन

तृतीय (विभूति) पाद

सू०—देशबंधश्चित्तस्य धारणा ॥१॥

उ०—उसी स्थान मे (जहां धारणा की गई हो) चित्त का निश्चल (एक सा) बराबर लगा रहना ध्यान कहाता है।

सू०—तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः ॥३॥

र—आपो भूल ने मन रो वणी जगा' में मिल जाणो समझ रो सुधारो वा समाधि वाजे है।

---

(५) उ०—आठवाँ योग का अंग जो आप ने समाधि कहा था, उसे भी कृपा कर आज्ञा कीजिये ?

उ०—उस जगह चित्त ऐसा ठहर जाय कि स्वयं आपको भी भूल कर मानो उसी पदार्थ रूप हो जाय, तब वही (ध्यान ही) समाधि कही जाती है, अर्थात् जब चित्त एक जगह लगाया जाता है तब वह धारणा कही जाती है। जब उस जगह मे ठहर जाता है तब ध्यान कहाता है और उसी में चित्त के मिल जाने से (तदाकार हो जाने से) समाधि कही जाती है।

सू०—त्रयमेकत्र संयमः ॥४॥

र—अणाँ तीनाँ रो ही एकठो नाम ऊँडो विचार वा संयम वाजे है।

---

(५) प्र०—हे भगवन्! इस धारणा ध्यान समाधि का पृथक् पृथक्

फल कहिये। जैसा कि पहले पाँचों अगो का आप ने कहा था?

उ०—धारणा का फल ध्यान और ध्यान का फल समाधि है और ये तीनों इकट्ठे होने से संयम कहाते हैं। किसी स्थान में चित्त का ऐसा लग जाना कि वह मानों आप को भी भूल जाय, इस को भी संयम कहते हैं।

सू०—तज्जयात्प्रज्ञालोकः ॥५॥

२—यूँ ऊँडो विचार मधवा यूँ समझ वधे है।

---

(५) प्र०—जबये तीनो साथ ही होने से सयम इस एक ही नाम मे कहे जाते है तो इस संयम का ही क्या फल है सो कहिये।

उ०—हे सौम्य! संयम सिद्धि हो जाने पर पहले जो तुझे विवेक ख्याति नाम की प्रज्ञा कही थी (जिसकी प्राप्ति के ही लिये अष्टाङ्ग योग (योग के आठों अङ्ग) कहे गये हैं) उस (विवेक ख्याति) का प्रकाश होता है।

सू०—तस्यभूमिषु विनियोगः ॥६॥

२— अगी समभ ने पगत्या पगत्या वधावणी चावे।

(५) प्र०—हे भगवन्! आपने साधारण आज्ञा करी थी कि किसी जगह में इन तीनों को इक्ट्ठे करने से ही संयम होता है, सो कृपा कर यह कहिये कि किस जगह मे यह सयम करने से विवेक ख्याति नाम का सच्चा अनुभव प्राप्त होता है?

उ०—इस सयम को सीढ़ी दर सीढ़ी (सोपान क्रम) से करना चाहिये अर्थात् एक दम ऊँची बात मे भी चित्त लगा देने से वह वहाँ नही ठहर सकता और नीची में लगाने से पीछा गिर जता है। इसलिये अपने अधिकार के अनुसार ही किसी दर्जे पर इस संयम (चित की स्थिति) को करना चाहिये, और एक दर्जा तय (पक्का) करके फिर आगे को बढ़ना चाहिये॥

(नोट)—इसी सयम को कितने ही भावना, मनन, वा विचार विशेष भी कहते हैं, यह जीवमात्र में होने पर भी मनुष्यों मे विशेष और उनमें भी योगी मे अधिक होता है। योग के आठ अग ही आठ दर्जे सममने चाहिये। उन में यह पहला दर्जा है। इस यम में भी अहिंसा पहला है। इसमें भी अणुव्रत और परमाणु से इस क्रम से एक एक से आगे का दर्जा। इनमें भी यम,

नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार तक एक श्रेणी में समझे जाकर धारणा, ध्यान, समाधि दूसरी श्रेणी में माने जाते हैं। इन में आगे एक दर्जा खास योग का विवेकख्याति है और उसके आगे परम योग-कृतकृत्यता-ही है और ये कुल चित्त को तबदीली (परिणाम) है। मूढ, क्षिप्त, विक्षिप्त, एकाग्र, समाधि, और निरोध ही यथाक्रम चित्त की भूमिका है और इन्ही के अंतर्गत योग के आठों अंग है, परम समाधि के लिये ये आठो अग हैं।

सू०—त्रयमन्तरङ्गं पुर्वेभ्यः ॥७॥

२—ई तीन ही पगत्या पे'ली रा पाँच ही पगत्याऊँ ऊपरला है।

---

(५) प्र०—उन दर्जों (सीढ़ियों) को कहिये ?

उ०—ये तीनों ही (धारणा, ध्यान और समाधि) पहले कहे हुए पाँचों (यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार) से अंतरंग (योग के निकट के, अंग हैं अर्थात् वे पाँचो अंग स्थूलता को लिये होने से योग के बाहरी अंग (पाँचों इन्द्रियो की तरह) हैं और ये तीनों भीतरी (तीनों अंतःकरण की तरह) अग हैं। क्योंकि उन पाँचों मे तो शरीर आदि की भी आवश्यकता है और इन तीनों में केवल चित्त का ही काम

होने से ये (धारणा, ध्यान और समाधि) तीनों योग के उन पाँचों (यम, नियम आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार,) से यथाक्रम ऊँचे दर्जे के हैं।

सू०—तदपि बहिरङ्गं निर्वीजस्य ॥८॥

२—अखड महासुख तो अणाँ शूँ भी ऊँचो है।

---

(५) प्र०—क्या सब से मुख्य योग के निकट के ये ही तीनों अंग हैं, या इन से भी आगे कोई योग का निकट अंग है?

उ०—मुख्य योग के तो ये तीनों भी बाहरी अग ही हैं, अर्थात् योग (चित्तवृत्तियों का निरोध) दो प्रकार का है सम्प्रज्ञात, (विवेकख्याति) और असम्प्रज्ञात, इसी को सबीज और निर्वीज भी कहते हैं। उस में ये धारणा आदि तीनों सबीज योग के खास अंग हैं और निर्बीज के तो ये बाहरी अग ही हैं। भाव यह है कि विवेकख्याति (सबीज समाधि) सयम की स्थिरता के बाद ही आती है (सयम स्थिर हुए पहले नहीं होती) परन्तु निर्वीज विना विवेकख्याति (सबीज) के नहीं आती (अर्थात् विना विवेकख्याति (सबीज) पाये कोई केवल संयम से ही निर्वीज समाधि को नहीं पा सक्ता।

नोट—इनके (संयम के) आगे का दर्जा एक और है जिसको विवेकख्याति कहते हैं और उस के आगे खास योग आता है। खास योग जो निर्बीज समाधि है, उसके निकट का दर्जा विवेकख्याति (सच्चा अनुभव) है और विवेकख्याति के पास का दर्जा यह (धारणा, ध्यान, समाधि) है अर्थात् इन तीनों के बीच में एक विवेक-ख्याति नाम का दर्जा और है। फिर उस (विवेक-ख्याति) के बाद खास योग है, खास योग निर्बीज समाधि को कहते हैं और उसके निकट का (प्राप्ति का) अंग सबीज (संप्रज्ञात) समाधि है और यह धारणा, ध्यान, समाधि तो उस सम्प्रज्ञात—(सबीज विवेक ख्याति) समाधि का निकट का अंग होने से खास योग-जो निर्बीज समाधि है, उसका तो यह बाहरी (एक दर्जा दूर का) अंग ही हुआ। अर्थात् सर्वोपरि योग असंप्रज्ञात (निर्बीज निरोध) है। इसकी नीचे की सीढ़ी सम्प्रज्ञात (सबीज विवेक ख्याति) है और तीसरी सीढ़ी यह संयम समाधि है :—

नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति॥

श्री गीताजी

—०:ः०—

सू०—व्युत्थाननिरोधसंस्कारयोरभिभव प्रादुर्भावौ निरोधक्षणचित्तान्वयो निरोधपरिणामः ॥६॥

२—मन रो आपे आवा रो स्वभाव छूट ने, देखे जणी रे आधीन रे'वा री स्वभाव पड़जाय, यो ही अखंड महासुख वाजे है। अणी ने ही मन रो स्वभाव बदल जाणो अर्थात् निरोध परिणाम के' है।

---

(५) प्र०—हे भगवन्! मैं उस योग का खुलासा सुनना चाहता हूँ, कि जो खास योग है और जिसके यह धारणा आदि तीनों बाहिर के दूर के ही साधन गिने जाते हैं और यह भी आज्ञा करें कि यह समाधि वस्तु क्या है कि जिसमें ये धारणा ध्यानादि भी नहीं पहुँच सकते। हे भगवन्! वह खास योग निर्बीज समाधि क्या है?

उ०—जब चित्त की वृत्तियों के सूक्ष्म अंश (संस्कार) भी विवेकख्याति के असर से रुक जाते हैं तब चित्त की इसी रुकने की हालत को निरोध कहते हैं और यही चित्तवृत्ति निरोध नाम का योग तुझे प्रथम कहा था। वह चित्त की ही एक हालत (परिणाम) है इसे ही निर्बीज समाधि भी कहते हैं।

नोट—चित्त के संस्कारों के उठने की (बहने की चंचलता की) हालत को छोड़ कर स्थिरता की हालत में आजाना

हो खास परम योग (निर्बीज समाधि) है। चित्त की इस हालत (गहरी संस्कार तबदीली) को निरोध परिणाम कहते हैं। यही चित्तवृत्तिनिरोध नाम से पहले कहा था और निर्बीज भी इसे ही कहते हैं।

सू०—तस्य प्रशान्तवाहिता संस्कारात् ॥१०॥

२—मन में ऊँडी या वात जम जावा शूँ पछे पाछो मन थापे नी थाय शके है।

---

(५) प्र०—हे भगवन् ! इस प्रकार के चित्तवृत्ति निरोध से (निर्बीज परमयोग से) चित्त की हालत तबदील होकर पीछी नीची हालत में क्यों नहीं आती और जो चित्त की यह निरोध की हालत भी तबदील होती है, तो यह निरोध निर्बीज (फिर पीछा न ऊगनेवाला) कैसे हो सकता है। निर्बीज समाधि नाम का जो योग है, वही सब से उत्तम खास योग क्यों है ? जब चित्त बहने की हालत को (बदल कर) स्थिरता की हालत में आजाता है तो फिर पीछा बहने की हालत मे (चञ्चलता की हालत मे) क्यों नहीं जाता, यह निरोध की हालत चित्त की स्थिर कैसे रहती है ?

उ०—जब विवेक ख्याति प्राप्त होती है (जो कि इस निर्बीज की पहली दशा है) उस में ही ऐसे संस्कार (गहरे

दृढ और सच्चे ख्याल) जम जाते हैं कि फिर वहाँ उनके सिवाय अन्य किसी भी ख्याल की समाधि कदापि हो ही नहीं सकती अर्थात् विवेक ख्याति क संस्कार मात्र ही जब रह जाते हैं, तब दूसरे कोई विचार न आकर वह एक ही (निरोध विवेक ख्याति के संस्कार की ही अखंड धारा बहती रहती है) इसी चित्त की हालत को निर्बीज (दूसरे ख्याल से रहित चित्त की हालत) कहते हैं।

(नोट) "य लब्ध्वा चापर लाभ मन्यते नाधिक तत ।
यस्मिन् स्थितो न दु खेन गुरुणापि विचाल्यते ॥"

श्रीगीताजी

सच्चे अनुभव (विवेक ख्याति) के संस्कार इसमें ऐसी जड़ जमा लेते हैं कि फिर वे ही वे रहकर दूसरे झूठे अनुभव (अविद्या के संस्कार) वहाँ नहीं हो सकते इसमें संस्कार (भीतरी चित्त की हालत) तबदील होती है अर्थात् चित्त अपनी असली हालत को पा लेता है।

सू०—सर्वार्थतैकाग्रतयोः क्षयोदयौ चित्तस्य समाधि परिणामः ॥११॥

२—मन रो आपे आवणो, घट ने एक कानी रे'वा रो स्वभाव पड जाय यो मन रो नाम ,लक्षण) बदलणो बाजे है।

---

(५) प्र०—सम्प्रज्ञात समाधि जो विवेक ख्याति है, उसमे ऐसे

क्या सस्कार (गहरे विचार) हो जाते हैं कि जिनकी फिर तबदीली ही न होकर वे ही वे (एक ही प्रकार के) रह जाते हैं ? उस विवेक ख्याति सच्चे अनुभव) के विचार ऐसे क्या होते हैं कि जिनकी जड फिर नहीं उखडती अर्थात् जिस विवेक ख्याति से यह निर्बीज हालत होती है वह सच्चा अनुभव (विवेक ख्याति क्या है, जब विवेक ख्याति की हालत से निरोध की हालत होती है तो विवेक ख्याति की हालत किस से होती है ?

उ० – जब चित्त का आत्मा से अलग भान होकर आत्मा से (द्रष्टा से) चित्त का मिश्रण (एकता) मिटने लग जाता है, तब इसी चित्त की हालत को विवेक ख्याति या असम्प्रज्ञात समाधि के नाम से कहते हैं और यही हालत गहरे सस्कार (परमयोग के) ऐसे डाल देती है कि फिर वह निरोध की हालत, चित्त की कभी भी तबदील नहीं हो सकती ।

(नोट) इस मे बहुत खयाल करने की हालत बदल कर चित्त की एकाग्रता की हालत हो जाती है । यह भी चित्त की एक प्रकार की हालत है कि जिसमें झूठे सर्वार्थता, अनुभवों को छोड सचाई में चित्त की बाहरी हालत की तबदीली हो जाती है । छूटकर, मिटकर, दबकर, विवेक ख्याति से बाहरी विचार (सर्वार्थता) आत्माकारता (एकाग्रता ज्ञान) की ही हालत में चित्त रहने लग जाता है, इसी से फिर वे ज्ञान, (विचार) दृढता को पकड लेते हैं । बहुत तरगें उठने की तबदीली होकर

(एक ही तरफ) चित्त लगने से एकाग्रता से विवेक-ख्याति होती है, इसमें चित्त की हालत बहुत ख़याल करने की तबदीली होकर एकाग्र (एक तरफ) हो जाती है।

सू०—ततः पुनः शान्तोदितौ तुल्यप्रत्ययौ चित्तस्यैकाग्रतायाः परिणामः ॥१२॥

२—मन री चंचलता में भी एक ही कानी आवता रे'णो मन री अवस्था बदलणो बाजे है।

---

(५) प्र०—हे भगवन्! कहाँ तक चित्त की हालत तबदील हो सकती है और इस दृढ़ता की हालत में चित्त कैसे आता है?

उ०—हे सौम्य! फिर जब वह एकाग्रता ज्ञान की हालत दृढ़ होने लगती है, तब ज्ञान के सच्चे अनुभव के बीच में दूसरे विचार आने नहीं पाते, यही चित्त की हालत जब दृढ़ हो जाती है, तब निर्बीज समाधि परमयोग (अपनी असली हालत को) चित्त पा लेता है फिर चित्त वहाँ से नहीं हट सकता। जब तक चित्त अपनी असली हालत नहीं पा लेता है अर्थात् निर्बीज समाधि नहीं होती है, तब तक फिर उत्तर आने की निर्बलता रहा करती है।

(नोट) बारंबार एक ही तरह के विचार उठते रहना और

उनके बीच में दूसरे विचारो का न आना ही चित्त की एकाग्रता की हालत कही जाती है। यह एकाग्रता की हालत सयम के अधिक ठहरने से आती है और एकाग्रता की हालत अधिक ठहरने से संप्रज्ञात (विवेक-ख्याति) की हालत होती है। विवेक ख्याति अधिक रह जाने से निर्बीज हालत हो जाती है और तब योगी कृतकृत्य हो जाता है।

—०—

सू०—एतेन भूतेन्द्रियेषु धर्मलक्षणावस्थाः परिणामा व्याख्याताः ॥१३॥

२—यूँ ही हरे'क चीज रा स्वभाव, नाम, ने अवस्था बदले है।

---

(५) प्र०—क्या यों हालतें चित्त की ही बदलती हैं या और भी किसी की बदलती है।

उ०—इसी तरह देखने की इन्द्रियें और इन्द्रियो से दीखने वाली सब चीजें अपनी अपनी हालत तबदील करती हैं अर्थात् जो कुछ दीखता है वह कुल ही हालत की तबदीली (परिणाम) ही है।

(नोट) अपनी खास हालत से दूसरी हालत में होना धर्म-परिणाम कहाता है। यही हालत दूसरी तब्दीलों से अलग होने से लक्षण परिणाम भी इसे कहते हैं और इसका भी नया पुरानापन अवस्था परिणाम कहाता है।

सू०—शान्तोदितोऽव्यपदेश्यधर्मानुपाती धर्मी ॥ १४॥

२—सारा हरफेर में भी जणी रो हेरफेर नी व्हे' वो ही स्वभाववाजे है।

---

(५) प्र०—ये हालते किस को तबदील होती हैं ?

उ०—जो अब होने वाली, होगई, और हो रही है, हालत में अपनी खासियत बिना छोड़े ही अपनी हालत में बदलता रहता है। वही खास हालत धर्मी के नाम से कही जाती है और उसकी हालतें उसका धर्म कहाती हैं। इसी खास हालत को प्रकृति द्रव्य आदि नाम से भी कहते हैं। यह सम्पूर्ण जगत् इसी की हालतें हैं, और इसकी कितनी हालते हो सकती हैं, यह कोई नहीं जान सकता। क्योंकि इसकी कोई हद नहीं है।

सू०—क्रमाऽन्यत्वं परिणामाऽन्यत्वे हेतुः ॥१५॥

२—अणी स्वभाव में हेरफेर पणों तो तरंगाँ री लमटेर शूँ है।

---

(५) प्र०—वह खास हालत तबदील नहीं होकर भी अनेक हालतें तबदील कैसे करती हैं अर्थात् एक धर्मी के अनेक धर्म कैसे होते हैं ?

उ०—सिलसिले की तबदीली (क्रमान्यत्व) ही हालत तबदीली का कारण है अर्थात् यद्यपि खास हालत

एक ही है, तो भी उसमें सिलसिले की तबदीली है, उसे ही हालत तबदीली कहते हैं। जैसे मिट्टी है, वह मिट्टी ही है, उसका एक वर्तन बनाने से वह मिट्टी वर्तन की हालत मे तवदील होकर भी अपनी मिट्टी की हालत में रहती ही है फिर उस वर्तन को पकाने पर वह पक्के वर्तन की हालत मे होकर भी, है मिट्टी ही। फिर वह फूट कर रोटी बनाने की तई की हालत मे हो जाती है। यही सिलसिले से (क्रम से) तवदीली (मिट्टी, कच्चा वर्तन, पका वर्तन, और तई) ही क्रम से तबदीली कही जाती है और या हालत को तबदीली होने पर भी वह, है मिट्टी ही, इसका मतलब यह है कि एक कोई ऐसी वस्तु है कि उस मे अनन्त (बेशुमार) हालतें तबदील कर लेने की ताकत है और जो कुछ पहले हो गया हो रहा और होगा यह कुल और कुछ नहीं, उसी एक वस्तु की हालत तबदीली मात्र है। उसे ही अव्यक्त मायाशक्ति प्रधान आदि अनेक नाम से लोग कहा करते हैं।

सू०—परिणामत्रयसंयमादतीतानागत-ज्ञानम् ॥१६॥

२—जी तरगाँ व्हे'ने मिट गई, व्हेय री' है, ने व्हे'गा, अणाँ मे ऊँडो विचार करया शूँ आगली पाछली सूझया लाग जाय है।

---

(५) प्र०—हे भगवन् ! मैंने यहाँ तक यह समझा कि चित्त इन्द्रिय

और ये दीखने वाले रग शब्द आदि एक ही वस्तु की केवल हालत तबदील हो रही है कि जो ऊँचा योग का अधिकारी नहीं होने से इस दीखने वाले शक्ति के उलट फेर को ही बडी बात मानता है। उसको योग मे विश्वास, विना प्रत्यक्ष के नही हो सकता और विना विश्वास आगे बढ नही सकता। इस लिये ऐसे अधिकारी के लिये में अब प्रश्न करता हू कि आपने जो आज्ञा की थी कि धारणादि तीनों सयम की सिद्धि हो जाने से सच्चा अनुभव (विवेक ख्याति) मिलता है और उस संयम को सीढी दर सीढी चढाना चाहिये और सब से सयम की ऊँची सीढी विवेक ख्याति नाम का सच्चा अनुभव है। परन्तु किसी की यह इच्छा हो कि जो बात होने वाली है अथवा हो गई, उसे जानू तो उसे क्या करना चाहिये अर्थात् मन्द अधिकारी इन्ही तबदील होने वाली बातो की इच्छा किया करते हैं। ऐसा मनुष्य अष्टाङ्ग योग साधन कर अगर यह इच्छा करे कि मुझे होने वाली बात और होगई उसकी मालूम हो जाय तो योग से उसकी यह इच्छा कैसे पूरी हो सकती है?

उ०—हे सौम्य। प्रत्येक वस्तु की तीन तरह की तबदीली होती है। पहली हालत को पहली तबदीली और पहली हालत को बदल कर दूसरी मे आना इसे ही धर्म परिणाम भी कहते हैं। फिर इस दूसरी हालत में कुछ ठहरने की सी प्रतीति होना लक्षण परिमाण कहाता है। फिर तीसरी हालत में जाना

-,अवस्था परिणाम कहाता है। इन तीनों हालतों में संयम करने से होने वाली और जो होगई, वह बात मालूम हो जाती है।

सू०—शब्दार्थप्रत्ययानामितरेतराध्यासात्सङ्करस्तत्प्रविभागसंयमात् सर्वभूतरुतज्ञानम् ॥१७॥

र—बोली बोली रो अर्थ ने बोली बोली रा विचार मिल्या थका व्हे' ज्यूँ दीखे है। पण-अणाँ रो न्यारो न्यारो ऊँडो विचार करे तो सबाँ री बोली समझवा लाग जाय।

---

(५) प्र०—कोई योगी चाहे कि मुझे पशु पक्षी तथा सब तरह की भाषा की समझ पड़ने लगे तो उसे क्या करना चाहिये ?

उ०—शब्द, शब्द का अर्थ और उसका ज्ञान, एक दूसरे से मिले हुये मालूम होते हैं। इन तीनों मे अलग अलग संयम करने से सब जीवों की बोली समझ में आ जाती है ?

सू०—संस्कारसाक्षात्करणात् पूर्वजाति-ज्ञानम् ॥१८॥

२—अन्त:करण रो ऊँडो विचार करे तो पे'ली रा जन्म री खबर पड़ जाय।

(५) प्र०—पूर्व जन्म का ज्ञान कैसे होता है-इस जन्म से पहले मैं कौन और क्या था यह कैसे मालूम होता है ?

उ०—संस्कार (इन्छा) मे सयम करने से पूर्व जन्म का ज्ञान हो जाता है।

सू०—प्रत्ययस्य परचित्तज्ञानम् ॥१६॥

२—पराया रा विचार रो ऊँडो विचार करे तो वणी रा मन मायली खबर पड़ जाय।

(५) प्र०—किसी दूसरे के मन की बात कैसे मालूम होती है ?

उ०—उसके चित्त मे सयम करने से उस में क्या क्या भाव है, यह मालूम हो जाता है।

सू०—न च तत्साऽऽलम्बनं तस्याऽविषयी-भूतत्वात् ॥२०॥

न—पण अणी शूँ आगे री खबर नी पडे। क्यूँ के जणी पे ऊँडा विचार करे वणी री हीज खबर पडे है।

---

(५) प्र०—हे भगवन्! यों पराये मन की बात जानने से फिर यो भी मालुम हो जाता है कि नहीं, कि इनके मन मे यह बात है और वह इस प्रकार की है। जैसे-किसी के चित्त मे प्रीति है यह तो मालूम होगया पर किस मे प्रीति है और जिसमें प्रीति है वह वस्तु कैसी है और उसकी प्रीति इसमें है कि नहीं यह भी क्या इसी चित्त में सयम करने से ज्ञात हो जाता है, या कोई अन्य उपाय है?

उ०—हे सौम्य! पराये चित्त मे सयम करने से उस चित्त की हालत की मालूम होती है कि इसमे राग द्वेष आदि क्या है। फिर उस राग द्वेप में सयम करने से यह मालूम पड़ती है कि किसमें ये राग द्वेप हैं। फिर उसमे सयम करने से मालूम पडती है कि वह कैसा है। यों आगे से आगे सयम बढाना पडता है, एक दम सीढी छोड कर मालूम नहीं पडती।

सू०—कायरूप संयमात् तद्ग्राह्यशक्तिस्तम्भे चक्षुःप्रकाशाऽसंप्रयोगेऽन्तर्द्धानम् ॥२१॥

२—अलोप व्हेवा रो उपाय यो है के शरीर रा रंग मे ऊँडो विचार कर रंग ने छिपाय लेवे, जणी शूँ दूसरा ने आपणो रंग नीं दीखे।

---

(५) प्र०—कोई यह चाहे कि मुझे कोई देख न सके अर्थात् अन्तर्धान हो जाऊँ तो उसे क्या करना चाहिये ?

उ०—अपने शरीर के रंग में संयम करने से वह रंग छिप जाता है तब दूसरे की आँख में वह रंग आता ही नहीं। इससे योगी को कोई देख नहीं सकता। यों ही शब्द में संयम करने से उसकी बोली कोई नहीं सुन सकता, इसी प्रकार सब तरह से वह छिप सकता है।

सू०—सोपक्रमं निरुपक्रमं च कर्म तत्संयमाद्-परान्तज्ञानमरिष्टेभ्यो वा ॥२२॥

२—शरीर छूटवा री खबर पाड़णी व्हे'तो कर्म री धीमी, ने आगती चाल पे ऊँडो विचार करे अथवा उपद्रवाँ पे विचार करे।

---

(५) प्र०—मरने की कैसे मालूम हो सकती है ?

उ०—हर एक के कर्म दो तरह के होते हैं-कुछ कर्म तो बाहर आने के लिये (फल देने को) तैयार होते हैं अर्थात् जल्दी फल भुगताते हैं, और कुछ विलम्ब से। इन दोनों प्रकार के कर्मों में संयम करने से मृत्यु का ज्ञान होता है अर्थात् विपरीत हालत से भी मृत्यु की मालूम हो जाती है।

सू०—मैत्रादिषु बलानि ॥२३॥

२—मोह, दया, ने हर्ष अणाँ तीनाँ पे ऊँडो विचार करवा शूँ वगीरे ई तीन ही आधीन व्हे जांय।

---

(५) प्र०—कोई यह चाहे कि मैं किसी विरोधी से मित्रता करा दूँ वा मुझ से शत्रु भी मित्रता करे तो उसे क्या करना चाहिये ?

उ०—मैत्री, करुणा, मुदितादि और यम नियम आदि जो पहले कहे थे, उनमें से जिसमें संयम करे उसी का बल योगी प्राप्त कर लेता है। मित्रता की भावना से मित्रता की ताकत योगी में आ जाती है, जिससे, उससे वा वह चाहे जिससे चाहे सो मित्रता कर सकता है यों ही करुणादि सब समझ लेना चाहिये।

सू०—वलेषु हरितवलादीनि ॥२४॥

र—बळ पे ऊँडो विचार करे तो चावे जतरो (हाथी रो) वळ आय जाय।

(५) प्र०—कोइ चाहे कि मेरे में हाथी के समान बल पराक्रम होवे तो उसे क्या करना चाहिये ?

उ०—हाथी के बल में सयम करने से हाथी का वल योगी में आजाता है। यों ही जिसके बल की इच्छा हो उसी के बल मे सयम करने से उसी का वल प्राप्त हो जाता है।

सू०—प्रवृत्त्याऽऽलोकन्यासात् सूक्ष्मव्यवहित-विप्रकृष्टज्ञानम् ॥२५॥

र—छेटी री, नजी'क री, ने आळसा री चीजाँ देखणी चावे तो मायला उजाळा पे ऊँडो विचार करे।

(५) प्र०—बहुत बारीक, दूर अथवा छिपी हुई (गड़ी हुई) वस्तु का ज्ञान कैसे होता है ?

उ०—शोक रहित जो सात्विक प्रकाश पहले कहा था, उसमें सयम करने से सूक्ष्म वा ओट मे आई हुई और दूर की वस्तु दीखने लग जाती है अर्थात् अनेक प्रकार के सूर्य चन्द्र नक्षत्र मणि आदि दीखने लगते हैं।

नोट—पाद १ सूत्र ३६ मे कही सो, विशोका है, यह हृदय में धारणा से मिलती है।

सू०—भुवनज्ञानं सूर्य्ये संयमात् ॥२६॥

२—सूरज पे ऊँडो विचार करे तो तीन ही लोक दीसवा लाग जाय ।

(५) प्र०—हे भगवन् ! स्वर्ग नरक आदि लोकों की मालूम कैसे पड़ती है ?

उ०—सूर्यद्वार में सयम करने से सब लोक दीसने लग जाते हैं।

सू०—चन्द्रे ताराव्यूहज्ञानम् ॥२७॥

२—चंद्रमा में ऊँडो विचार करवा शूँ तारा री बणावट री खबर पड़ जाय ।

(५) प्र०—तारे आकाश में किस क्रम से हैं, यह कैसे मालूम होवे ?

उ०—चन्द्रमा मे संयम करने से ताराओं की बनावट (रचना) मालूम होती है ।

सू०—ध्रुवे तद्गतिज्ञानम् ॥२८॥

२—ध्रुव में ऊँडो विचार करे तो वाँरी चाल री खबर पड़ जाय ।

(५) प्र०—इन तारागणों की चाल कैसे मालूम होती है ?

उ०—ध्रुव में संयम करने से इनकी गति मालूम होजाती है

मालूम हो, अथवा कहाँ सयम करने से क्या फल (सिद्धि) होता है। यह कैसे मालुम होजाय ?

उ०—प्रातिभ नाम का ज्ञान जो साधक को स्वय ही होता है, उस मे सयम करने से सब ऊपर कहे ज्ञान (सिद्धियें) हो जाते हैं। प्रातिभ नाम एक तारे का है, जो स्वय ही योगी को दीखता है। यह मालूम होजाता है कि अमुक सयम से अमुक सिद्धि होती है।

सू०—हृदये चित्तसंवित् ॥३४॥

२—हिया (हृदय पे ऊँडो विचार करवा शूँ मन दीखवा लाग जाय।

---

(५) प्र०—हे भगवन्! चित्त वृत्तियों के निरोध को ही योग कहते हैं। उस चित्त की मालूम कैसे पडती है अर्थात् इस प्रातिभ ज्ञान की प्राप्ति कैसे होती है ?

उ०—हृदय मे सयम करने से चित्त का ज्ञान होजाता है।

सू०——सत्वपुरुषयोरत्यन्ताऽसंकीर्णयोः प्रत्ययाऽविशेषो भोगः परार्थत्वात्स्वार्थ-संयमात्पुरुषज्ञानम् ॥३५॥

२—मन तथा मन ने दीखे ज्यो, बिलकुल नी मिले। पण या वात नी समझवा शूँ ही दुःख सुख भोगणा पड़े है। पण कणी ने भोगणा पड़े, अणी पे ऊँडो विचार करे तो आत्म ज्ञान व्हे'जाय।

---

(५) प्र०—पुरुष (आत्मा) का ज्ञान कैसे होता है अथवा चित्त ज्ञान से क्या होता है ?

उ०—चित्त (बुद्धि) दृश्य (दीखने वाला) होने से और पुरुष (आत्मा) देखने वाला होने से ये दोनो बिलकुल अलग अलग ही हैं। तो भी इनकी एकता की समझ (एक समझना) ही भोग है और यह एक समझना भी बुद्धि (चित्त) दृश्य होने से पुरुष के ही दृश्य हैं। इससे 'मेरा' यह शब्द भाव दृष्टा।ही के आश्रित है। इसलिये इस भाव में सयम करने से आत्म ज्ञान हो जाता है और यह आत्म ज्ञान दृश्य (बुद्धि) को नहीं होता तो भी योंही कहा जाता है अर्थात् चित्त के ज्ञान से ही पुरुष का ज्ञान होता है।

सू०—ततः प्रातिभश्रावणवेदनाऽऽदर्शास्वाद-वार्ता जायन्ते ॥३६॥

२—यूँ आत्म ज्ञान व्हे' जदी उपज, शुणणो, अटकणो, दीखणो, स्वाद, ने सुगंध, ई घणा वत्ता वत्ता आवा लागे है।

(५) प्र०—हे भगवन ! यों विलक्षण आत्मज्ञान होने पर फिर क्या होता है ?

उ०—जब ऐसा आत्मज्ञान होने लगता है तब अर्थात् स्वअर्थ में (मेरा इस भाव में) संयम करने से बिना ही पढ़े लिखे सब विद्या स्वतः आजाती है और दूर नजदीक की और अलौकिक बातें सुनना, छूना, दीखना, चखना और सूँघना प्राप्त होता है, अर्थात् उसके मन और इन्द्रियों की रोक टोक कहीं नहीं रहती।

(नट) पुरुष ज्ञान के पूर्व प्रातिभ पाद १ सूत्र ३६ में कहा सो और १।३५ में कही सो प्राप्त होती है। इसे ही विषयवती प्रवृत्ति कही है १।३५। से १।३६। उत्कृष्ट है।

सू०- तेसमाधातूपसर्गा व्युत्थाने सिद्धयः ॥३७॥

२—ई सिद्धियाँ है। अणाँ शूँ घणो सुख व्हे' है। पण खरो सुख अणा शूँ आवतो थको अटक जाय है।

(५) प्र०—तब तो यह संयम ही उत्तम हुआ कि प्रथम सब

सिद्धियें भी प्राप्त होजाती हैं और फिर आत्म ज्ञान भी इसी स्वार्थ सयम से हो जाता है ?

उ०—जिसका चित्त आत्माकार होने लगता है उस योगी के तो ये सिद्धियें विघ्न हैं। क्योंकि बीच मे पड कर आत्मा कार होने से (रुकने मे) उस चित्त को हिला देती हैं और जिसका चित्त चचल है, उसके लिये ये सब वास्तव मे सिद्धियें ही हैं कि उसे इन से योग मे विश्वास दृढ हो जाता है।

सू०—बंधकारणशैथिल्यात्प्रचारसंवेदनाच्च चित्तस्य परशरीरावेशः ॥३८॥

२—यूँ ज्ञान शूँ, कर्म ढीला पड्या शूँ, ने शरीर री बणावट सूझ्या शूँ दूसरा रा शरीर में जवाय शके।

(५ प्र०—हे भगवन्! सिद्धियों का मतलब मेरी समझ मे आ गया। अब यह कहिये कि पराये शरीर मे प्रवेश करने की सिद्धि कैसे होती है अर्थात् योगी पराये शरीर मे कैसे जा सक्ता है ?

उ०—जब इस शरीर में चित्त के बन्धन के कारण ढीले हो जाते हैं और चित्त के आने जाने का रास्ता दीख जाता है तब चित्त दूसरे शरीर में प्रवेश कर सक्ता है

सू०—कायाऽऽकाशयोः सम्बन्ध संयमात् लघु तूलसमापत्तेश्चाकाशगमनम् ॥४२॥

र—शरीर, ने आकाश री मिलावट पे विचार करे तो फोरो रुई रा तार सरीखो व्हे ने आकाश मे उड़ शके।

---

(५) प्र० आकाश में उड़ना चाहे तो किस प्रकार उड़ सकता है?

उ० शरीर और आकाश के संबंध मे सयम करने से अथवा हलके (तूल) पदार्थ मे सयम करने से आकाश मे उड़ सकता है अर्थात् हलका और बारीक हो सकता है।

सू०—वहिरकल्पितावृत्तिर्महाविदेहा ततः प्रकाशावरणक्षयः ॥४३॥

र—शरीर न्यारो दीखवा लाग जाय तो शरीर रा सुख दुःख नी व्यापे ने अज्ञान मिटे।

---

(५) प्र०—कोई योगी चाहे कि इस शरीर से निकल कर एक इच्छा मय शरीर धारण कर लू और फिर इस शरीर के बंधनों से छूट जाऊँ तो उसे क्या करना चाहिये?

उ०—हे सौम्य! चित्त को यह मान रहता है कि मैं इस शरीर में हूं जब अपने इच्छामय शरीर को भावना

से बना कर उसी में ऐसा भाव कर लेवे और वही भाव दृढ़ हो जाय तो उसे महा विदेहा धारणा कहते हैं और इस धारणा से चित्त के शुभाशुभ (भले बुरे) परदे भी हट जाते हैं अर्थात् बाहर बिना ही कल्पना के वृत्ति हो जाने से महाविदेहा धारणा होती है और इस से बुद्धि (चित्त) के आवरण (परदे) हट जाते हैं।

सू०—स्थूलस्वरूपसूक्ष्माऽन्वया संयमाद्-भूतजयः ॥४४॥

२—ई सब चीजाँ कतरी हीं मही चीजाँ शूँ वणी है ने वी वगाँ शूँ मही शूँ ने वी फेर वणा शूँ मही शूँ, ने वी भी कणीक रे वास्ते है। ई पे ऊँडो विचार करे ताई सब चीजाँ वणी रे आधीन व्हे जाय।

---

(५) प्र०—आकाश आदि पच महाभूत (पाँचोंतत्व) यागी के आधीन कैसे होते हैं ?

उ०—ये पाँचो भूत (आकाशादि) क्या हैं, इनका स्वरूप क्या है वह इनका स्वरूप किससे है और उनमे व्यापक क्या है, और वे किस लिये हैं इन मे सयम करने से पाँचों महाभूत (तत्व) योगी के आधीन हो जाते हैं अर्थात् यह जगत ही पंच-महाभूत है पंच महाभूतो का स्वरूप आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी है और

पाँचों का स्वरूप शब्दादि पाँचों तन्मात्रा से है इन में तीनों गुण (सत्व रज तम) व्यापक हैं और ये सब पुरुष के लिये हैं, यों क्रम से संयम बढ़ाता जायगा त्यों त्यों ही ये भूत आधीन होते जायंगे।

सू०—ततोऽणिमादिप्रादुर्भावः कायसम्पत्तद्धर्मानभिघातश्च ॥४५॥

२—अणी शूँ आठ ही सिद्धियाँ 'मिले ने शरीर रा गुण वधे, ने ई चीजाँ वणी ने दु:ख नी देवे।

---

(५) प्र०—अणिमा (महा सूक्ष्म होना) गरिमा (बहुत भारी होना) लघिमा (बहुत हल्का होना) महिमा (बहुत बढ़ जाना) प्राप्ति (चाहे जिसे पा लेना) प्राकाम्य (इच्छा पूरी हो जाना) वशित्व (पांचों भूत और उनसे बने प्राणियों को वश कर लेना) इशित्व (बनाना और बिगाड़ सकना) यत्र कामा वसायित्व (सत्य संकल्प होना) आदि सिद्धियें कैसे मिलती है ?

उ०—ऊपर कहे अनुसार क्रम से भूत जय होने से क्रम २ से अणिमादि आठों सिद्धियें प्राप्त होती हैं और इन पाँचों भूतों की रुकावट योगी के नहीं रहती और काय संपत् भी प्राप्त हो जाती है।

सू०—रूपलावण्यबलवज्रसंहननत्वानि कायसम्पत् ॥४६॥

र—रुपाळो, सुहावणो, वळ, ने मजबूती ई शरीर रा गुण वाजे है।

---

(५) प्र०—काय संपत् किसे कहते हैं जो भूतजयी को होती है ?

उ०—सुन्दर शरीर की बनावट, मनोहरता, बल और वज्र के समान शरीर की दृढ़ता (मजबूती) को काय संपत् कहते हैं, ये भी भूतजय करने वाले योगी को होती है।

सू० ग्रहणस्वरूपाऽस्मिताऽन्वयाऽर्थवत्वसंयमादिन्द्रियजयः ॥४७॥

र—इन्द्रियाँ, ने इन्द्रियाँ री कारण। म्हूं पणो, ने म्हूं पणा रो, कारण। ई सब जणी रे वास्ते है, याँ पे ऊँडो विचार करवा शूँ इन्द्रियाँ आधीन व्हे'।

---

(५) प्र०—हे भगवन्! पंचभूत जय तो मैंने समझ लिया। अब इन्द्रियें आधीन कैसे होती हैं सो आज्ञा कीजिये ?

उ०—इन्द्रियों के विषय ग्रहण पर विचार करे कि यह ग्रहण क्या है इसका स्वरूप क्या है, इस में किससे ग्रहण

होता है, इस में क्या मिला हुआ है और क्यों है अर्थात् जैसे देखना यही ग्रहण कहाता है इसका स्वरूप (देखने का काम) आंख है और यह अहंता के लिये ही देखती है। इस अहंता में तीनों गुण मिले हैं और तीनों गुण पुरुष के वास्ते हैं, यों क्रम से ग्रहण-स्वरूप अस्मिता अन्वय और अर्थ तत्व में संयम करने से इन्द्रियें आधीन हो जाती हैं। यों ही पाँचों इन्द्रियों का समझना चाहिये।

सू०—ततो मनोजवित्वं विकरणभावः प्रधान-जयश्च ॥४८॥

२—अणीं शूँ मन रे साथे जाय आय शके, ने विना ही इन्द्रियाँ (आँख कान आदि रे वणाँ रा काम कर लेने सब पे हुकम चलाय शके (सब आधीन व्हे' जाय)।

---

(५) प्र०—इस इन्द्रियजय नाम के संयम से योगी को क्या सिद्धियें होती हैं ?

उ०—इस प्रकार इन्द्रियों को जीतने-वाले योगी की गति मन के समान हो जाती है अर्थात् जहाँ मन जाता है, वहाँ मन के साथ ही वह जा सकता है और एक स्थान पर बैठा हुआ ही सब कुछ देख सुन सकता है और प्रकृति की बातों पर अधिकार कर सकता है

अर्थात् हर एक चीज जड चेतन पर हुकुमत कर सकता है।

सू०—सत्वपुरुषान्यता ख्यातिमात्रस्य सर्वभावाधिष्ठातृत्वं सर्वज्ञातृत्वं च ॥४९॥

२—देखे ज्यो, ने दीखे ज्यो न्यारा जणाय जावा शूँ सबाँ रो आधार, ने सबाँ ने जाणवा वाळो व्हेवाय जाय।

---

(५) प्र०—यो मन का वेग प्राप्त होने पर और सब जान लेने पर भी जब योगी एक तरफ जायगा वा देखेगा तो उधर ही की मालुम पड़ेगी। परन्तु ऐसा क्या उपाय है कि हाथ के आँवले के मुआफिक ही सब जगत् को एक ही साथ जान सके ?

उ०—प्रकृति और पुरुष (द्रष्टा और दृश्य) के अलग अलग भान होते ही (द्रष्टा दृश्य का विवेक होने लगता है तब ही) सम्पूर्ण विश्वाधार और सर्वज्ञ योगी ही हो जाता है।

सू०—तद्वैराग्यादपि दोषबीजक्षये कैवल्यम् ॥५०॥

२—अणी ने भी नी' चावा शूँ महासुख व्हे'। क्यूँके पछे बिलकुल वासना मिट जाय है।

---

(५) प्र०—क्या यही परमयोग समझना चाहिये ?

उ०—इस में भी वैराग्य होने से (इस में भी तृष्णा न रहने से) ही दोष (दुःख) बीज (अविद्या अज्ञान) क्षय हो जाता है और तब ही पुरुष निकालस हो जाता है यही (कैवल्य) स्वरूपावस्थान है। इसे ही मोक्ष समझना चाहिये अर्थात् अपने में सब संसार को (प्रकृति को) देखना विवेकख्याति है और इस देखने से भी पुरुष का निकालस संयोग रहित होना ही परम-योग है।

सू०—स्थान्युपनिमंत्रणे सङ्गस्मयाऽकरणं पुनरनिष्टप्रसङ्गात् ॥५१॥

२—महासुख रे वचे नरी तरे रा लाळच आवे है, अणाँ में नी उळझणो ने अणाँ रो घमंड भी नी करणो। दूज्यूँ पाछा महा दुःख री कानी उतराय जवाय है।

---

(५) प्र०—हे भगवन्! आपने आज्ञा करी थी कि ये सिद्धियें परमयोग में तो विघ्न ही हैं तब इन सिद्धि विघ्नों के आने पर योगी किस उपाय से इन विघ्नों से छूटे अर्थात् सिद्धियों में न उलझने का क्या उपाय है और इन में उलझने से ही क्या नुकसान है?

उ०—इन सिद्धियों की खेंच में खिंचना नहीं चाहिये क्योंकि इन में लग जाने से पीछी वही जंन्म मरण की परंपरा

आ लगती है। इसी से इन्हे विघ्न कहा है (फिर पीड़ा सब दुःखों में पड़ जाता है) और एक यह भी सावधानी साथ ही में रखनी चाहिये कि सिद्धियों के त्यागने का घमंड भी न आ जाय। क्योंकि इनके त्यागने का घमड भी वैसा ही हानिकारक है जैसा इनका सेवन।

सू०—क्षणतत्क्रमयोः संयमाद्विवेकजम् ज्ञानम् ॥५२॥

२—छोटी शूँ छोटी चाल, ने छोटी शूँ छोटी वगत पे ऊँडो विचार करवा शूँ साँची समझ आवे है।

---

(५) प्र०—हे भगवन्! यह कैसे हो सकता है। प्रथम तो सिद्धियों को त्यागना ही कठिन और फिर उनके त्याग का अभिमान न होना इससे भी कठिन है। ऐसी हालत में क्या करना चाहिये?

उ०—क्षण (समय का सब से छोटा भाग) और उसका क्रम (उसकी तबदीली) में सयम करने से विवेकज ज्ञान होता है अर्थात् तबदीली की सूक्ष्मता मे सयम करने से दृश्य और द्रष्टा का विवेक होता है।

सू०--जातिलक्षणदेशैरन्यताऽनवच्छेदात्तुल्ययो स्ततः प्रतिपत्तिः ॥५३॥

२—अणी शूँ एक सरीसी चीजाँ रो भी फरक दीखवा लाग जाय है।

(५) प्र० इस तबदीली की सूक्ष्मता में सयम करने से जो विवेक होता है उस विवेक से क्या लाभ होता है ?

उ० जिस वस्तु मे जाति (मनुष्य पशु आदि), लक्षण (निशान), देश (उत्तर दक्षिणादि) आदि से कोई भी भेद न होवे उसका भी इस विवेक के ज्ञान से भेद मालुम हो जाता है अर्थात् एक ही वस्तु में अनेकता और अनेक में भी एकता इससे मालुम हो जाती है।

नोट—यदाभूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति ।
तत एव च विस्तार ब्रह्म सपद्यते तदा ॥
(गीताजी)

सू०—तारकं सर्वविषयं सर्वथा विषयमक्रमं चेति विवेकजं ज्ञानम् ॥५४॥

२—या तरावावाळी समझ है। ई शूँ सब आगली पाछली विगत वार एक साथे दीख जाय है।

(५) प्र० यों सर्वत्र एक में अनेकता और अनेक मे एकता मालुम होने से क्या होता है ?

उ०—यह सब विघ्नों से तारनेवाला ज्ञान है। इसीमें इसे तारक कहते हैं, इसी से सब जाना जाता है, इसलिये इसे सर्व विषय भी कहते हैं। सब की तबदीली भी इसी से मालुम होती है, इसी से इसे सर्वथा विषय भी कहा है। एकदम (विनाक्रम) सब मालुम होने से इसे अक्रम भी कहते हैं। यह ज्ञान विवेक पूर्वक होने से इसे विवेकज ज्ञान भी कहा है अर्थात् हाथ के आँवले की मुआफिक सम्पूर्ण दृश्य (प्रकृति) का इससे ज्ञान हो जाता है और इसी से वह योगी प्रकृति के विघ्नों मे नहीं फँसता यही पूर्ण ज्ञान है।

सू०—सत्वपुरुषयोः शुद्धिसाम्ये कैवल्यमिति ॥५५॥

२—जदी विचार अश्यो निर्मल व्हे' जाय के विचार रे साथे ही देखवावाळो निर्मळ न्यारो व्हे' जाय यो ही महा सुख है। अर्थात् विचार री निर्मळता ही महा सुख है, पण वणी में नाम भी मे'ल रो अंश नी रे'णो चावे।

---

(५) प्र०—हे भगवन! क्या इस प्रकार विवेकज ज्ञान होने से ही मुक्ति होती है या इस के विना भी मुक्ति मोक्ष (परम योग) कैवल्य हो सकता है?

उ०—प्रकृति (दृश्य) पुरुष (द्रष्टा) की पृथकता (जुदाई) ही मोक्ष है (कैवल्य है), परमयोग है, वह चाहे सब

योगसूत्र

अथ चतुर्थ (कैवल्य) पाद

सू०—जन्मौषधिमन्त्र तपः समाधिजाः सिद्धय ॥१॥

२—जन्म शूँ, औषध शूँ, जप शूँ, समवा शूँ, ने ऊँडो विचार करवा शूँ सिद्धियाँ व्हे' है अर्थात् मन रो बळ (शक्ति) वधे है, हेर फेर व्हे' है।

---

(५) प्र०—हे भगवन्! आपने संयम से अनेक प्रकार की सिद्धियें आज्ञा करी। अब यह आज्ञा कीजिये कि सयम के सिवाय और भी कोई सिद्धियें होने का क्रम है या नहीं अर्थात् सिद्धियें संयम से होती हैं या और भी कोई प्रकार है। सिद्धियें कुल कितनी प्रकार की होती हैं सत्य पुरुष की समान शुद्धि ही परम सिद्धि आपने आज्ञा करी थी। अब यह आज्ञा करिये कि सिद्धि सयम से (ध्यान से) ही होती है या इसके और भी प्रकार हैं?

उ०—पाँच प्रकार से सिद्धियें होती हैं जन्म, औषधि, मंत्र, तप, और समाधि (ध्यान) से अर्थात् किसी को जन्म से ही सिद्धि (हालत तबदीली) होती है। किसी को औषध से किसी को मन्त्र से, तप से और किसी को पहले कहे मुआफिक समाधि (संयम) से

सिद्धि (हालत तबदीली) मिलती है। इन पाँचों में संयम की ही सिद्धि मुख्य है।

— —

सू०—जात्यन्तरपरिणामः प्रकृत्यापूरात् ॥२॥

१—यो हेरफेर स्वाभाविक ही व्हे' है अर्थात् कोई कठा शूँ नवी बात नी आय जाय है, पण ज्यूँ पाणी रो स्वभाव ऊँडो ने वाशदी रो ऊँनो है, यूँ ही प्रकृति रो भी या स्वभाव हीज है।

---

(५) प्र०—हे भगवन्! आपने प्रथम कहा था कि शरीर और इन्द्रियों की हालत तबदीली (परिणाम) एक हालत से दूसरी हालत में हो जाना ही सिद्धियें हैं। अब यह हालत तबदीली किससे, क्यों होती है अथवा इन पाँचों कारणों से क्यों होती है, सो कृपा कर कहिये ?

(नोट) ये सिद्धियें क्या हैं (क्या वस्तु है) इस दूसरे प्रश्न के उत्तर में प्रथम सूत्र है।

उ०—हे सौम्य! एक हालत तबदीली होने से स्वाभाविक ही दूसरी हालत पदार्थ की होती ही है। क्योंकि कुदरत (प्रकृति) से खाली कोई जगह कदापि हो ही नहीं सक्ती। यह कुदरती नियम (प्रकृति का स्वभाव) ही है इसी स्वभाव को ही प्रकृति की पूर्णता (आपूर) भी कहते हैं अर्थात् शरीर इन्द्रियों का एक जाति (तरह) की हालत से दूसरी तरह की हालत में हो जाना ही

सिद्धियें कहाती हैं और यह प्रकृति व्यापक होने से प्रकृति मे ही होती है।

—:—:—

सू०—निमित्तमप्रयोजकं प्रकृतीनां वरणभेदस्तु ततः क्षेत्रियवत् ॥३॥

२—करषो बीज रे ऊगवारो गेलो करदे है। ज्यूँ मन रो बळ ता (ई पाँच ही वातां तो) आगी स्वभाव रे गेलो करदे है।

---

(५) प्र०—एक हालत से दूसरी हालत मे शरीर इन्द्रियें तबदील किसी कारण के विना ही होती है, तो यों ही विना कारण ही सब की यह तबदीली एक ही साथ क्यों नहीं होती अथवा यह परिणाम किस निमित्त से होता है ?

उ०—हे सोम्य! प्रकृति (कुदरत) के स्वभाव को कोई वना नहीं सकता और न कोई उसके स्वभाव को मिटा ही सकता है। क्यों कि सब ही बनना बिगड़ना कुदरत के ही भीतर (अतर्गत) है। तथापि चित्त के प्रकृति की रोक हट जाती है। जैसे किसान पानी लेने के लिये क्यारे की रोक (बांध) तोड़ देता है और दूसरी तरफ के क्यारे में रोक बाँध देता है। इससे जल स्वयं ही एक क्यारे से दूसरे क्यारे में बहने आने लग जाता है। यों ही प्रकृति स्वय सब भली बुरी वस्तु का भडार लिये चारो

श्रोर से बह रहो है। सिर्फ धर्म अधर्म के निमित्त से (रोक बांध ले) वैसी ही प्रकार की तबदीली हो जाती है अर्थात प्रकृति का कोई कारण नही होने पर भी चित्त के शुभाशुभ से उसकी रोक और प्रवाह होता रहता है जैसे किसान से खेती होती है। यद्यपि किसान नया कुछ नहीं करता।

सू०—निर्माणचित्तान्यस्मितामात्रात् ॥४॥

२—म्हूंपणों मन रा वळ रे गेलो करे है, म्हूँपणा शूँ मन वणे है।

---

(५) प्र०—हे भगवन्! जब चित्त के शुभाशुभ (भलेबुरे) के निमित्त के अनुसार ही से प्रकृति का प्रवाह (तबदीली) होने लगता है, तो ये चित्त ही पृथक् पृथक् किस निमित्त से होते हैं, अर्थात् इन चित्त रूपों में जो प्रकृति बहने लगी इसका क्या कारण है। अर्थात शरीर इन्द्रियें चित्त के कारण से बनती है, तो चित्त किस कारण से बनते हैं।

उ०—सिर्फ अहं (मैं) मात्र से ही चित्त बनते हैं, जो कि पहले संयोग के नाम से कहा गया है अर्थात् प्रकृति पुरुष (जड़चेतन) के संयोग से ही पृथक् पृथक् चित्त बनते हैं और यह संयोग अविद्या से बनता है और अविद्या विपर्यय वृत्ति से बनती है, विपर्यय वृत्ति प्रकृति के रजो-

गुण की अधिकता से बनती है और प्रमाण विवेक ख्याति (मताधिक) से मिटती है। यह तुझे पहले कहा ही था।

नोट—निमित्त (चित्त) किस से चित्त व्यष्टि बुद्धि है और बुद्धि समष्टि चित्त है, निर्माण चित्त समष्टि से व्यष्टिता का होना अस्मिता मात्र संयोग मात्र को कहा मात्र से केवल संयोग समझना, संयोग जन्य अन्य वस्तु के पूर्व जो संयोग वह संयोग मात्र समष्टि चित्त सब निर्माण चित्तों का आश्रय प्रयोजक। (इसका सम्बन्ध जुड़ता नहीं है। यह ऐसा ही लिखा हुआ है—सम्पादक)

सू०-प्रवृत्तिभेदे प्रयोजकं चित्तमेकमनेकेषाम् ॥५॥

२ – बळ न्यारा न्यारा है, पण मन तो एक हीज है। म्हूँ पगो एक ही है, पण वणी रा मन न्यारा न्यारा है।

(५) प्र० अनेक प्रकार की तबदीली जो शरीर इन्द्रियें और चित्त की होतीं हैं, जिन्हें सिद्धियें कहते हैं उन में चित्त एक ही रहता है या अनेक। जो सब हालत में एक ही चित्त रहता है तब तो तबदीली ही क्या हुई और अलग अलग चित्त हो जाने से साधन तो कोई चित्त करे और उसे भोगे कोई दूसरा ही अर्थात् कर्म तो दूसरा करे और भोगे फिर और ही यह कैसे हो सकता है अर्थात हर एक शरीर इन्द्रियों के साथ मन (चित्त) भी तबदील होता है या नहीं ?

उ०—हे सौम्य ! हर एक तवदीली के साथ चित्त वह एक ही रहता है और उस एक ही चित्त से अनेको शरीर इन्द्रियो मे अनेक चित्त काम किया करते है, जैसे हमारे वाल, यौवन और जरा मे तथा जाग्रत, स्वप्न और सुपुप्ति में एक ही चित्त से अनेक चित्तो मे काम लिया है। यों ही अन्य देहो मे भी समझना।

नोट—देहिनोस्मिन् यथा देहे कौमार यौवन जरा।
तथा देहान्तरप्राप्ति र्धीरःस्तत्र न मुह्यति ॥२॥१३॥
प्रवृत्ति, खासवृत्ति अर्थात् समष्टि चित्त की व्यष्टि ही प्रवृत्ति और उसकी प्रवृत्ति वृत्ति कहाती है।

सू०—तत्र ध्यानजमनाशयम् ॥६॥

२—ध्यानरा (ऊँडा विचार रा) वळ वाळा मन मे कर्म भेळा (एकट्ठा) नी व्हे' है।

---

(५) प्र० हे भगवन् ! उन अनेक देहान्तरो में जो एक ही मुख्य चित्त काम लेता है, वह मुख्य चित्त भी एक ही तरह का होता है या मुख्यचित्त भी तरह तरह के होते हैं अर्थात निर्माण चित्त सव एक से ही होते हैं या उन में कुछ भेद होता है ?

उ० हे सौम्य ! उन मुख्य चित्तों में भी जो ध्यान युक्त चित्त है (विवेकख्यातिवाला चित्त है) वही निर्वंध (वासना रहित मुक्त) चित्त कहाता है। वाकी के कुल चित्त

वासना वाले (कर्म सहित ही हैं, अर्थात् ध्यान युक्त चित्त ही कर्म बंध से मुक्त है (जिस में अस्मिता नहीं है) बाकी सब चित्त कर्म बंधवाले ही है। जैसे—

"यस्य नाहं कृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।
हत्वापि स इमांल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते॥" श्रीगीताजी

सू०—कर्माऽशुक्लाऽकृष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषाम् ॥७॥

७ —उजळो, काळो, ने लेरवाँ ई तीन तरे' रा कर्म दूसरा रे व्हे' है, पण ध्यान रा ऊँडा विचार वाळा मन मे कर्म नी रे' है।

---

(५) प्र०—हे भगवन्! कर्म कितने प्रकार का है कि जिस की वासना वाला चित्त कर्म बंधवाला कहाता है और उनसे रहित चित्त (ध्यानज) मुक्त चित्त कहाता है? क्या योगी कोई कर्म नहीं करता जिससे उसका चित्त कर्म बन्ध से मुक्त रहता है और दूसरों का कर्म करने से बंधन मे रहता है ध्यानज ही अनाशय क्यों?

उ०—हे सौम्य! चार तरह के कर्म होते हैं–एक शुक्ल (भले = इष्ट) दूसरे कृष्ण (अनिष्ट = बुरे) तीसरे शुक्ल कृष्ण (भले बुरे = मिश्रित) चौथे अशुक्ल अकृष्ण (न भले न बुरे = गुणातीत)। इनमें से योगी के कर्म भलाई बुराई और मिश्रण से रहित होते हैं, यद्यपि योगी कर्म करता हुआ दीखता है तो भी वह अपने में कुछ भी नहीं

करता है। योगी के सिवाय और सब के कर्म या तो पाप के बुरे, या पुण्य के अच्छे वा पाप पुण्य के अच्छे बुरे मिले होते हैं ।

"अनिष्टमिष्टमिश्रञ्च त्रिविधं कर्मण: फलम्
भवत्यत्यागिनां प्रेत्य न तु संन्यासिनां क्वचित्
नैव किंचित्करोमीति युक्त मन्येत तत्ववित् ।
पश्यन् श्रण्वन् स्पृशन् जिघ्रन्न श्नन् गच्छन्स्वपन्श्वसन्
—श्रीगिता जी

स०—ततस्तद्विपाकानुगुणानामेवाभिर्व्यक्तिर्वासनानाम् ॥८॥

२—जश्या कर्म व्हे' वश्या ही विचार व्हे' है ॥

५ प्र० हे भगवन् ! योगी का अज्ञान (अविद्या) मिट जाने से उससे किसी प्रकार के कर्मों का संबंध नहीं रहता है, परन्तु जिनका कर्मों से लगाव है अथवा योगी नहीं है, उनके अच्छे बुरे कम से क्या होता है ? प्रत्यक्ष कर्मों को छोड़ कर अप्रत्यक्ष आशय क्यो मानें ?

उ० सौम्य ! जैसे कर्म होते हैं, वैसे ही चित्त के भीतर संस्कार (उनकी वासनाएँ इच्छाएं) संग्रह होती ही रहती हैं (इकट्टी होती रहती हैं ।) वे ही इच्छाएं अनेक प्रकार की होने से अनेक प्रकार के जन्मों में अपने अनुसार ही कर्म और भोग कराती हैं। यों ही वासनाश्रत्र

से जन्म कर्म और जन्म कर्म से इच्छाएं, यों वह अज्ञानचक्र चलता ही रहता है ॥

सू०—जातिदेशकालव्यवहितानामप्यानन्तर्य-स्मृतिसंस्कारयो रेकरूपत्वात् ॥६॥

२—चावे जणी जगा', चावे जगी जूण, (योनि) ने चावे जगी वगत में या विचार ने कमर्मा री शकल जुड़ी ही रे' है ।

(५) प्र०—कर्मों के सस्कार और संस्कार (इच्छा) से कर्म मानने में प्रत्यक्ष में कर्म का कारण कोई सस्कार नही दीखता है तब संस्कार विना ही कर्म होते हैं, यह मानने में क्या हर्ज है अर्थात् आशय से ही अभिव्यक्ति क्यो मानें, क्योंकि कर्म और आशय एक के उपरान्त दूसरा साथ ही जुड़ा हुआ नही दीखता ।

उ०—स्मृति विना कोई कार्य नहीं हो सकता और स्मृति और संस्कार एक ही होने सें जितने कुछ काम किये जाते हैं, वे पहले के संस्कार (इच्छा) से ही होते हैं चाहे समय, जाति, स्थान, अन्य होवे, परन्तु कार्य विना संस्कार के नहीं हो सकते ।

सू०—तासामनादित्वं चाशिषो नित्यत्वात् ॥१०॥

र—ठेठ शूँ ही या विचार कर्मा री शाँकळ गोळमटोळ है। क्यूँके सुख री चावना ठेठ शूँ ही है, ने ईं शूँ ही विचार कर्म री शाकळ है।

---

(५) प्र०—तब सस्कार स्मृति (इच्छा) किससे होती है ? क्योकि कर्म इच्छा से होते हैं, तो इच्छा किससे होती है अर्थात आशय विना कर्म नही, तो आशय किससे अर्थात आशय से कर्म होते हैं तो आशय किससे होते हैं ?

उ०—इच्छा (सस्कार) अनादि है अर्थात् इच्छा का आदि कारण कोई नही है। क्योंकि सुख मे प्रवृत्ति और दुख से निवृत्ति जीव मात्र मे जन्म से ही होती है।

सू०—हेतुफलाश्रयालम्बनैः सगृहीतत्वादेषामभावे तदभावः ॥११॥

र—मूर्खता, सुख, दु ख, ख्रार, हेतु, ने चावना शूँ, या विचार कर्मा री शाँकळ है। अणा रे छूट जावा शूँ या भी छूट जाय है।

---

(६) प्र०—तब तो इच्छा अनादि होने से कर्म अनादि होगा और कर्म से जन्म और जन्म से फिर कर्म, इच्छा। यों यह परपरा मिट नही सकती अर्थात् अनादि कैसे मिटे ?

उ०—यद्यपि वासना अनादि है, तो भी अनत नही है। क्योंकि वासना का संग्रह हेतु, फल, आश्रय, आलबन से ही होता है। अर्थात् इन चारों के आधार पर ही वासना (इच्छा) की स्थिति है, जब ये ही मिट जायँ, तो निराधार वासना नही रह सकती है। हेतु (अविद्या) फल (भोग मोक्ष) आश्रय (व्यष्टि मन, अज्ञान युक्त चित्त) आलंबन (विषय को कहते हैं इन से सुख चाहना वासना है अर्थात् हेतु आदि मिटने से मिटे।

सू०—अतीतानागतं स्वरूपतोऽस्त्यध्वभेदाद्धर्माणाम् ॥१२॥

२– छूटवा शूँ या विचार री शांकळ मिट जाय या वात नी है। पण या सिमट जाय है, अणी रो बाँधवा रो स्वभाव छूट जाय है।

---

(५) प्र०—तो क्या इन चारो हेतु आदि का नाश (अभाव) हो जाता है, या रूपान्तर होता है कि जिससे वासना का नाश होता है अर्थात् तब क्या हेतु आदि मिट जाते हैं (नित्य कैसे मिटे) ?

उ०—स्वरूप से नाश किसी वस्तु का नही हो सकता। क्योंकि प्रकृति नित्य है, केवल रूपान्तर होना ही नाश कहा गया है अर्थात् उनका रूपान्तर हो जाता है, ये मिट नहीं सकते।

सू०—ते व्यक्तसूक्ष्मा गुणात्मानः ॥१३॥

२—देखे जी, ने नी देखे जी ई सब ही चीजाँ एकहीज चीज मे है, यूँ समझणों ही अणी रो सिमटणो है।

(५) प्र०—हे भगवन्! वासना के कारण, हेतु (अविद्या) आदि का होना ही अनर्थ का मूल है, फिर उनका नाश भी नहीं होता, रुपान्तर ही होता है, यह भी आप कहते हैं तो फिर दोनों बातें कैसे हो सकती हैं अर्थात् वासना कैसे मिटे?

उ० हे प्रिय! प्रकृति ही अविनाशी कही गई है, वही प्रकृति दृश्य अदृश्य रूप से होने पर भी है, प्रकृति ही। क्यों कि त्रिगुण से रहित कोई वस्तु नहीं है और यों प्रकृति-मय ही सब समझ लेने से अविद्या आदि होकर भी अनर्थकारी नहीं होते अर्थात् ये हेतु आदि गुण ही है प्रकृति, ही है, यों जानना चाहिये।

सू०—परिणामैकत्वाद्वस्तुत्तत्वम् ॥१४॥

२—क्यूँके पाछा वणी एक में मिल जाय है, ई वणी एक शूँ न्यारा नी रे'शके जणी शूँ एक ही है॥

(५) प्र० अनेक वस्तुओं के दीखने पर भी एक ही वस्तु प्रकृति

ही सब है, यह बात कैसे समझ में आसकती है अर्थात् अनेक कैसे ?

उ० सब आखीर में प्रकृति के स्वरूप को ही पाते हैं। आदि में भी प्रकृति ही के स्वरूप में थे, वर्तमान में भी वही रूप है, ज्यों मृत्तिका ही प्रथम और अंत में भी मृत्तिका ही होने से वर्तमान में भी घट मृत्तिका ही है। इससे एक ही वस्तु है, अनेक नहीं।

सू०—वस्तुसाम्ये चित्तभेदात्तयोर्विविक्तः पंथा॥१५॥

रा—एक ही चीज है तो भी मन रा न्यारापणा शूँ न्यारी दीसे है (ज्यूँ—'आँगळ्या शूँ गोळी धरि, तर्जनी पे मध्यमा कर' बिच कंकर देख)।

---

(५) प्र०—जो सब एक ही वस्तु प्रकृति ही है, तो अनेक वस्तुएँ क्यों दीखती हैं ?

उ०—एक ही वस्तु होने पर भी चित्त के भेद से वस्तु भेद प्रतीत होते हैं। जैसे एक ही स्त्री अनेक सम्बन्धियों को चित्त भेद से अनेक भाव से दीखती है अर्थात् निर्माण चित्त के भेद से भेद दीखता है ?

उ०—यह चित्त स्वयं ही दीखने वाला है, तो फिर यह कैसे देख सकता है ।

सू०—एकसमये चोभयानवधारणम् ॥२०॥

र—एक शूँ देखवारो ने दीखवारो दो ही काम लारे नी व्हे' शके।

(५) प्र०—देखना और दीखना दोनों ही काम यही एक ही चित्त कर लेगा ?

उ०—एक साथ दो काम एक से नहीं हो सकते, दीखने वाला, देखने वाला नहीं हो सकता और देखने वाला दीखने वाला नही हो सकता (चित्त दीखता है तो देखता नहीं और देखता है तो दीखता नही है) ।

सू०—चित्तान्तरदृश्ये बुद्धिबुद्धेरतिप्रसंगः स्मृति सङ्करश्च ॥२१॥

र—मनने देखवावाळो फेर दूसरो मन माना, तो या लमटेर पूरी नी व्हे' ने याद भी नी रे' ।

(५) प्र०—तब एक दूसरा चित्त उस चित्त को देखने वाला मान लेने मे क्या दोष है ? पुरुष ही मानने से क्या लाभ ?

उ०—एक चित्त को दूसरा चित्त देखने वाला और फिर वह भी दीखता है, इसलिये उसको भी देखने वाला और यों और और करने से कहीं टिकाव न रहेगा और जब देखने वाला ही कायम न होगा, तो स्मृति कहां ठहरेगी अर्थात् स्मृति भी न रह सकेगी। क्योंकि स्मृति किसी स्थायी के आधार पर रहती है अर्थात् एक चित्त दृश्य, वैसे ही जितने कल्पे जायँ सब ही दृश्य ही हुए। तब इतनी कल्पना व्यर्थ क्यों करनी और जब इसकी ही निश्चय न हुई, तो कल्पना करने वाला कौन होगा इसका भी पता न चलेगा!

सू०—चित्तेरप्रतिसंक्रमायास्तदाकारापत्तौ स्वबुद्धिसंवेदनम् ॥२२॥

२—मन देखवा।वाळा रो स्वभाव आप में लेयने देखनावाळो वणे है, पण देखवावाळा रो तो स्वभाव कणी शूँ मिलवारो है, ही नीं'।

---

(५) प्र०—तो क्या देखना, सुनना, समझना, सब पुरुष ही करता है, या चित्त ही करता है?

उ०—निर्मल निर्लेप पुरुष में चित्त जैसी प्रतीति, चित्त से होती है और दृश्य चित्त में द्रष्टा पुरुष की प्रतीति द्रष्टा पुरुष से होती है, इससे ही उपचार से पुरुष में द्रष्टापन है।

सू०—द्रष्टृदृश्योपरक्तं चित्तं सर्वार्थम् ॥२३॥

२—देखे, ने दीखे अणां दोयाँ रा चलका मनरे दो ही पछवाडे पड़े, जणी शूँ मन सब काम करे है।

---

(५) प्र०—जब पुरुष में भी देखना नहीं है और चित्त में भी नहीं है, तो यह विश्व दीखता कैसे है ?

उ०—दीखने की वस्तुएँ चित्त के एक बाजू है (आगे है) और देखने की वस्तु चैतन्य चित्त के एक तरफ है (पीछे है) इसीसे चित्त ही को ज्ञान अज्ञान में उपयुक्त समझते हैं, अर्थात् जड़ चैतन के प्रकाश से मिला हुआ यह जड़ चैतन दोनों जैसा होता है, यही संयम है इसी से संसार है, यही संयोग है।

सू०—तदसंख्येयवासनाभिश्चित्रमपि परार्थं संहत्यकारित्वात् ॥२४॥

२—जो मन चावे जस्यो ही बणो, पण तो भी देखबावाळा शूँ हीज साबत व्हे' है, दीखे है।

---

(५) प्र०—तब तो संसार के और आत्मा के प्रकाशवाला ही चित्त रहेगा और इसे ही द्रष्टा समझना होगा इस की निवृत्ति कैसे ?

उ०—यों जड़ चैतन का प्रकाश युक्त चित्त अनेक प्रकार की

वासनाओं से (संसार से) रँगा हुआ है, तो भी है, पुरुष ही के लिये अर्थात् इतना होने पर भी चित्त है, दृश्य ही आत्मा और अनात्मा के अंश को धारण करके भी चित्त है, तो दृश्य जड़ ही। यह संपूर्ण चित्र विचित्रता लिये आत्मा के अर्थ ही है।

सू०—विशेषदर्शिन आत्मभावभावना विनिवृत्तिः ॥२५॥

२—अणो बात ने समझ लेवे वणी ने आप में भम नी व्हेवे

---

(५) प्र०—जो इस प्रकार चित्त आत्मा का दृश्य ही है तो फि बन्ध संयोग अस्मिता तो होनी ही न चाहिये। तब फि ज्ञानी अज्ञानी में क्या भेद रहा?

उ०—हे सौम्य! इस प्रकार चित्त को जानने वाले की अप मे विपरीत भावना थी, वह निवृत्त हो जाती है, और न जानने से वह बनी रहती है।

सू०—तदाविवेकनिम्नं कैवल्यप्राग्भारं चित्तम् ॥२६॥

२—वणी में साँची समझ रो धोरो व्हे'बा लाग जाय।

---

(५) प्र०—इस प्रकार विपरीत भावना अपने में निवृत्त होने से क्या होता है?

उ०—तब ज्ञान चित्त की तरफ झुकता जाता है और वह मुक्त केवल रूप होता जाता है।

मू०—तच्छिद्रेषु प्रत्ययान्तराणि संस्कारेभ्यः ॥२७॥

२—यूँ चित्त मे पे'ली री वातां भी वचे वचे याद आय जाय।

---

(५) प्र०—यों चित्त के आत्म ज्ञान की तरफ झुकने से और निर्मल होने से क्या उसे अन्य कुछ भी ज्ञान नही रहना है ?

उ०—पहले सस्कारो के कारण से बीच बीच में चित्त मे अन्य याद आया करते हैं, जिनसे योगी व्यवहार भी करता रहता है।

मू०—हानमेषां क्लेशवदुक्तम् ॥२८॥

२—पण वी तो अणी साँची समझ रे आगे ठे'र नी शके। अतरा विचार री नाईं ई भी साँची समझ शूँ हीज मिट जाय।

---

(५) प्र०—इन संस्कारों को भी रोकने का क्या उपाय है अर्थात् सस्कारों की अत्यन्त निवृत्ति कैसे होती है ?

उ०—जैसे क्लेशों का नाश कहा था, वैसे ही इन संस्कारों का भी नाश होता है अर्थात् ध्यान से नाश किये जाते हैं।

सू०—प्रसंख्यानेऽप्यकुसीदस्य सर्वथाविवेक-ख्यातेर्धर्म मेघः समाधिः ॥२९॥

र—जदी अणी साँची समझ रो भी मोह मिट जाय, जदी तो वचे दूसरा विचार री आवणो बिलकुल रुक जाय, ने केवल साँची समझ रा विचार होज रे' जाय।

(५) प्र०—तब तो सदा ही सब संस्कारों को मिटाने के लिये ध्यान बना रखना चाहिये ?

उ०—ज्ञान में भी इच्छा मिट जाने से धर्ममेघ नाम की समाधि होती है, इसमें सत्य ज्ञान ही सर्वत्र फैल जाता है, यही अखण्ड अविप्लवा विवेक ख्याति कहाती है।

सू०—ततः क्लेशकर्म निवृत्तिः ॥३०॥

र—जदी दुःख रा विचार (कर्म) बिलकुल मिट जाय है।

(५) प्र० इस प्रकार धर्ममेघ समाधि से फिर क्या होता है ?

उ० धर्ममेघ समाधि से सब क्लेश और कर्मों की निवृत्ति होजाती है।

०

सू०—तदा सर्वावरणमलापेतस्य ज्ञानस्यानंत्या-ज्ज्ञेयमल्पम् ॥३१॥

र—पछे अणी साँची समझ रे रोकवावाळो कोई विचार नी रे'वा शूँ ईं रे जाणवो बाकी नी रेवे, केवल अपार सुख ही सुख रे' जाय है।

(५ प्र०—फिर उसके चित्त की क्या दशा होती है ?

उ०—तब क्लेश कर्मों के आवरण से रहित ज्ञान (चित्त) अनन्त हो जाने से सब ही ब्रह्माण्ड तुच्छ अल्प या कुछ होजाता है अर्थात निर्माण चित्त अपने असली चित्त में मिल कर अनत हो जाता है।

सू०—ततः कृतार्थानां परिणामक्रमसमाप्तिर्गु-णानाम् ॥३२॥

र—अब कोई काम बाकी नी रे'वा शूँ हेर फेर व्हे'णो मिट जाय है।

---

५ प्र०—फिर क्या होता है ?

उ०—तब गुणों का कार्य समाप्त हो जाने से गुणों का तबदीली होना मिट जाता है अर्थात् एक ही प्रकृति

ही प्रकृति रह जाती है अर्थात् गुणों का क्रम रुक जाता है॥

मू०—क्षणप्रतियोगी परिणामापरान्तनिग्राह्यः क्रमः ॥३३॥

२—हेर फेर एक तरे' शूँ दूसरी तरे' व्हे' जाणो वाजे है, ने यो हेर फेर हरेक चीज रे नवी जूनी व्हे'वा शूँ जाण्यो जाय है॥

(५) प्र० गुणों का क्रम क्या है ?

उ० समय का भान मिट कर वस्तु की तबदीली का भान मिटना ही गुणों का क्रम मिटना है और समय का भान और गुणों की तबदीली का होना ही क्रम है॥

मू० पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति ॥३४॥

२—यूँ हेर फेर मिटवा शूँ हरेक चीज फेलणो छोड़ ने सिमट जाय है। अणी रो ही नाम अखंड महासुख तरंगाँ रो रुकणो मोख या देखवावाळा रो दीखे जणी में नी मिलणो है॥

(५) प्र० यों गुणों का क्रम रुक जाने से क्या होता है ?

उ० कृत कार्य होने से गुणों का फैलना मिटकर सिमट जाना अर्थात् सपूर्ण संसार एक प्रकृतिमय होजाना ही मोक्ष है अथवा पुरुष का स्वरूपावस्थान वा चित्त-वृति निरोध कहाता है अथवा यही परमपद कहाता है ॥

॥ [illegible] ग्रन्थः ॥

शुद्धिपत्र

पानारी	ओळमे	है	व्हे'णो चावे
भूमिका २	१८	दिख	दिखे
	१९	दिखे	दिख
३	४	दूजो	दूजा
३	१०	आंगळा	आंगळी
४	१५	जबीमें	जगमें
४	१७	भी व्हे'	भी न व्हे'
५	२४	चो	धाजे
६	१३	निकळा	निकळ
६	१६	अणाँ रा	अणाँ रो
७	१८	आश्रय	आश्रम
९	४	सा	सौ
९	१३	मत	मत
९	२०	यूँ	शूँ
१०	१५	मनीपिाएम्	मनीपिणाम
१	५	शानम्	शासनम्
२	१६	हीन नी	हीज नी
३	८	सवदा	सर्वदा
४	९	धम	धर्म
५	७	गुण रा	गुण रो
५	१६	देखवावळो	देखवावाळा
६	१७	य ही	या ही

पानारी	ओळमें	है	व्हे'गो –
८	३	वाळा	वाळो
१०	१२	ठिकाण	ठिकाणे
११	५	और वी	और वा
११	११	अणाजाण्या	अणजाण्या
१२	११	नामहीन	नामहीज
〃	१३	प्रमाणे	प्रमाण
१४	१७	मे'म	भे'म
१७	१६	टूट्यो रो	टूंट्यो रो ?
१८	१९	मान	भान
१९	८	मरणो	मिटणो
२०	१५	स्पद	स्पंद
३३	१९	असंप्रज्ञाय	असंप्रज्ञात
३३	१९	थका	थकी
३३	२३	उद्ने	उल्ले
४२	४	मिटन	मिनट
४२	१९	प्राणि	प्रणि
४७	१७	(पुरौंपा)	पुरुपाँ
४९	१५	कलि	काले
५२	१	प्रयती	परयती
५४	१७	और	ओर
६०	१३	फई-न-नई	फई-न-कई
९८	१७	उवा	उवो
१०२	११	शास्त्र	शास्त्र
१०३	४	छोटी	छेटी

पानांत	ओळींत	हे	व्हे'णो चावे
१०३	७	आयो	आपो
१०४	१८	सर्वात्कृष्ट	'सर्वोत्कृष्ट
१०६	९	तीगाँ	तीनाँ
१०९	५	कल	काल
१०९	२१	रना	करना
११०	१	समाधि	स समाधि
११२	२०	तन्	तनु
११३	१९	ततु	तनु
११७	१३	तेवा	तैवा
१२५	१०	द ख	दुःख
१२६	१२	चविश	हविश
१२६	१३	से	के
१२७	६	द्रष्टा	द्रष्ट
१२८	१५	लिंग	लिङ्ग
१३०	११	नष्ठ	नष्ट
१३२	१९	तद्विद्या	त विद्या
१३१	१	स्तान्तिवष्टा	स्तन्तिष्ठा
१३५	४	समाधीव	समाधाव
१३६	९	वा' रला	'वा' रला
१३८	१	जाति	रति जाति
१३९	१५	पति	मति
१४१	८	तत्कर्म	सत्कर्म
१४३	११	तत्सबोधः	ता सम्बोधः
१४३	१२	छुट	छूट